महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुख पत्र

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदु:खदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।

वर्ष : ६१ **अंक** : ११

दयानन्दाब्द: १९५

विक्रम संवत्: ज्येष्ठ कृष्ण २०७६

कलि संवत्: ५१२०

सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,१२०

सम्पादक

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

प्रकाशक-परोपकारिणी सभा,

केसरगंज, अजमेर- ३०५००१

दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-श्री मोहनलाल तँवर

वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।

दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क

भारत में

एक वर्ष-३०० रु.

पाँच वर्ष-१२०० रु.

आजीवन -३००० रु.

एक प्रति - १५/- रु.

विदेश में

वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर

द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर

त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर

आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.

एक प्रति - ३ पाउण्ड

एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०

ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२११७०

RNI. No. ३९५९ / ५९

i jki dkjh

जून प्रथम २०१९

अनुक्रम

०१. महात्मा बुद्ध स्वयं को आर्य मानते थे	सम्पादकीय	०४
०२. मृत्यु सूक्त-३०	डॉ. धर्मवीर	०७
०३. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	१०
०४. मूर्त्तिपूजा-विवेचन	गंगाप्रसाद उपाध्याय	१३
०५. 'हिन्दी प्रदीप प्रयाग' से	पं. बालकृष्ण भट्ट	१६
०६. आडम्बरों के उन्मूलन का...	रामनिवास गुणग्राहक	१८
०७. शङ्का समाधान- ४९	डॉ. वेदपाल	२०
०८. प्रभु ही सच्चा मित्र	कन्हैयालाल आर्य	२२
०९. सा विद्या या विमुक्तये	ब्र. राजेन्द्रार्य:	२४
१०. सभा के कर्मठ कार्यकर्त्ता....	अंकित 'प्रभाकर'	२८
११. संस्था की ओर से...		३०

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

महात्मा बुद्ध स्वयं को आर्य मानते थे

यह आलेख महात्मा बुद्ध के प्रारम्भिक उपदेशों पर आधारित है। इसको पढ़कर वे पाठक विस्मय का अनुभव कर सकते हैं जिन्होंने केवल परवर्ती बौद्ध मतानुयायी लेखकों की रचनाओं पर आधारित बौद्ध मत के विवरण को पढ़ा है। महात्मा बुद्ध ने अपने जीवन-काल में स्वयं कुछ नहीं लिखा। उन्होंने उपदेश दिये जिनको शिष्यों ने संकलित किया। बुद्ध के जीवन-काल में उन संकलनों के आधार पर बुद्ध की शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार एवं विस्तार होता रहा, किन्तु बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् उनकी शिक्षाओं, सिद्धान्तों और नियमों को लेकर उनके अनुयायियों में मतभेद और विवाद उभरने लगे। उनको दूर करने के लिए भारत में समय-समय पर चार बौद्ध शासकों के प्रबन्धन में चार संगोष्ठियाँ आयोजित की गईं। बौद्ध मत के प्रामाणिक आधार ग्रन्थ के रूप में पहले 'विनय पिटक' और 'सुत्तपिटक' के स्वरूप का निर्धारण हुआ। कुछ वर्षों के पश्चात् 'अभिधम्म पिटक' का। इन तीनों को '**त्रिपिटक**' कहा जाता है। जिस प्रकार सनातन जगत् में महाभारत का एक अंश 'भगवद् गीता' मान्य एवं प्रतिष्ठित है, वही प्रतिष्ठा 'धम्मपद' की है जो 'सुत्तपिटक' का एक अंश है। इसमें महात्मा बुद्ध के उपदेशों का संग्रह है। यह प्रारम्भिक उपदेशों का प्रामाणिक संग्रह माना जाता है। प्रस्तुत लेख में मुख्यत: उसी के आधार पर बुद्ध के मन्तव्यों को प्रदर्शित किया है।

महात्मा बुद्ध ने अपने जीवन में कोई नया मत नहीं चलाया था। तत्कालीन रूढ़िवादी पौराणिक समाज में वेद, यज्ञ और धर्म के नाम पर जो विकृतियाँ, कुरीतियाँ, पाखण्ड, अन्धविश्वास, क्रूर और जटिल कर्मकाण्ड एवं जातिवादीय अन्याय पनपे हुए थे उनको मिटाने के लिए उनका सुधार आन्दोलन था। वे एक समाजसुधारक के रूप में कार्यक्षेत्र में प्रस्तुत हुए थे। बाद में, उनके अनुयायियों ने उनकी विचारधारा को एक मत का रूप दे दिया और दर्शन के नाम पर एक नया बौद्ध-दर्शन गढ़ दिया जिसमें अनेक सिद्धान्त बुद्ध के विरुद्ध या बुद्ध द्वारा अप्रस्तुत भी थे और बौद्धों में परस्पर असहमति वाले थे। उनके कारण बौद्ध मत में ही अनेक सम्प्रदाय-उपसम्प्रदाय विकसित हो गये। उनका आचरण भी बुद्ध की शिक्षाओं के विपरीत और विकृत हो गया। उन सम्प्रदायों ने बुद्ध के उद्देश्यों को ही नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और बौद्ध मत को नास्तिक मत के रूप में स्थापित कर दिया। जैसे महीधर, उव्वट आदि ने अनर्थ करके वेदों के अभिप्राय को बदल दिया, ऐसे ही बौद्ध-विद्वानों ने बुद्ध की शिक्षाओं की मनचाही व्याख्या करके उनके अभिप्राय को या तो बदल दिया अथवा उसको संकुचित कर दिया।

महात्मा बुद्ध ने स्वयं को आर्य परम्परा के अन्तर्गत माना है और आर्य संस्कृति के उपदेष्टा के रूप में प्रस्तुत किया है। कुछ मतान्तरों को छोड़कर, उन्होंने अपने उपदेशों में वैदिक धर्मशास्त्रों, उपनिषदों और योगदर्शन के सदाचारों का ही प्रस्तुतीकरण किया है। उनके समय में कर्मकाण्ड एवं आहार-विहार में हिंसा का, आचरण में अधर्म का और सामाजिक व्यवहार में जातीय भेदभाव का बोलबाला था अत: उन्होंने अहिंसा, सदाचार और सामाजिक समरसता के निर्माण पर विशेष बल दिया। उपर्युक्त कथनों को अब हम प्रमाणों के आधार पर समझते हैं-

१. महात्मा बुद्ध ने स्वयं को आर्य और अपने सामाजिक कार्य को आर्य संस्कृति का पुनरुद्धार कार्य माना था। तपस्या-साधना के पश्चात् जिन चार सत्यों का उन्हें बोध हुआ उन्होंने उनको '**आर्य-सत्य**' नाम दिया था। सांसारिक जन्म-मरण रूप बन्धन-दु:ख से मुक्त होने का जो सन्देश आर्यों ने अपने वैदिक शास्त्रों के द्वारा दिया है वही इन चार आर्य-सत्यों में निहित है। इसी आधार पर 'सर्वदर्शन संग्रह' के लेखक माधवाचार्य ने 'बौद्धदर्शन' के प्रकरण में बुद्ध को '**आर्य बुद्ध**' कहा है। इतना ही नहीं, बुद्ध ने दु:खों से छूटने का आठ प्रकार का जो मार्ग बताया है उसको उन्होंने '**आर्य अष्टांग मार्ग**' नाम दिया है। चार 'आर्य सत्य' हैं- दु:ख का ज्ञान होना, दु:ख का कारण जानना, दु:ख की उत्पत्ति-प्रक्रिया और दु:ख को दूर करने की आवश्यकता,

दु:ख को दूर करने का मार्ग। उनका 'आर्य अष्टांगिक मार्ग है-सम्यक् दृष्टि', सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् व्यवहार, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, सम्यक् समाधि। पाठक ध्यान दें कि ये सभी वैदिक शास्त्रों और योगदर्शन के उपदेश हैं। बुद्ध ने उनका सच्चा आचरण करने पर बल दिया है (धम्मपद १४.१२)

आर्य मानने के सन्दर्भ में, महात्मा बुद्ध का एक वचन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है जिसमें उन्होंने अपने समस्त अनुयायियों=बौद्धों को आर्य कहा है। वे कहते हैं-

यो सासनं अरहतं अरियानं धम्मजीविनं।
पतिक्कोसति दुम्मेधो दिट्ठिं निस्साय पणिकं।।

(वही, १२.८)

अर्थ- 'जो धर्मनिष्ठ, अर्हत् (बौद्ध साधक) आर्यजनों की शिक्षाओं की निन्दा करता है, वह दुर्बुद्धि पापदृष्टि मनुष्य निन्दनीय है।'

आर्य की परिभाषा करते हुए कहा है कि 'प्राणियों की हिंसा करने वाला आर्य नहीं होता। अहिंसक ही सच्चा आर्य होता है' (वही, १९.१५) बुद्ध यह नहीं कह रहे कि मैं कोई नया धर्म प्रवर्तित कर रहा हूँ। वे कहते हैं-आर्यों के प्रवर्तित धर्म का पालन करना चाहिए। वही सुखी होता है, वही बुद्धिमान् है (**'अरियप्पवेदिते धम्मे सदा रमति पण्डितो'** ६.४)। मनुष्य को अप्रमादी होकर आर्यों द्वारा प्रदत्त ज्ञान ग्रहण करना चाहिए (२.२)। आर्यों का दर्शन मंगलकारी है और सान्निध्य सुखप्रद है (**'साधु दस्सनमरियानं सन्निवासो सदा सुखो'** १५.१०)। जो व्यक्ति निष्पाप और मलरहित हो जाता है उसको आर्यों की दिव्यभूमि प्राप्त होती है (१८.२)। ऋषि-महर्षि जन आर्य समुदाय के शास्त्रप्रणेता और समाज-सुधारक थे। बुद्ध कहते हैं कि तन-मन-वचन की पवित्रता रखते हुए ऋषियों के मार्ग पर चलो (२०.९)। इस प्रकार बुद्ध आर्य-शास्त्रकारों का सम्मान भी करते थे और स्वयं को आर्य समुदाय का सदस्य भी मानते थे।

२. महात्मा बुद्ध ने अपने प्रवचन मौखिक रूप में दिये थे। उस प्रवचन काल में बौद्धों के कोई शास्त्र नहीं बने थे। अपने प्रवचनों में वे अनेक बार शास्त्रों की, उनके मार्ग पर चलने की, उनका धर्म ग्रहण करने की प्रेरणा देते हैं। उन शास्त्रों के प्रति सम्मान प्रकट करते हैं। उनसे पहले, शास्त्र के रूप में वैदिक शास्त्र ही प्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित थे। शास्त्रों में सबसे प्रमुख शास्त्र वेद माने जाते थे, अतः शास्त्रों के सम्मान में वेदों का सम्मान स्वत: समाविष्ट हो जाता है। जो लोग कहते हैं कि बुद्ध वेदों के विरोधी थे, यह कथन सर्वथा निराधार है। पं. धर्मदेव विद्यामार्तण्ड ने अपनी पुस्तक 'वेदों का यथार्थ स्वरूप' में वेदों की प्रशंसा-विषयक बुद्ध के अनेक वचन उद्धृत किये हैं। उनमें एक-दो इस प्रकार हैं-

विद्वा च वेदेहि समेच्च धम्मम्।
न उच्चावचं गच्छति भूरिपञ्जो।

(सुत्तनिपात, गाथा २९२)

अर्थ- 'जो विद्वान् वेदसम्मत धर्म को जान लेता है, वह बुद्धिमान् व्यक्ति कभी सन्देहग्रस्त नहीं रहता अर्थात् वह धर्म के यथार्थ स्वरूप को समझ लेता है।'

विद्वा च सो वेदगु नरो इध भवाभावेसंगम इमं विसज्जा।
सो वितत्न्हो अनिघो निरासो अतारि सो जाति जरान्ति ब्रूमिति।

(वही, गाथा १०६०)

अर्थ- बुद्ध कहते हैं- 'मैं तुम्हें बताता हूँ कि वेदों का ज्ञाता विद्वान् मनुष्य सांसारिक मोह-माया को त्याग कर तृष्णारहित, पापरहित, इच्छारहित हो जाता है और वह जन्म, जरा, मृत्यु को जीतकर मुक्त हो जाता है।'

एक अन्य स्थल पर तो वेदमन्त्रों का स्वाध्याय न करने को दोष कहा है (**'असज्झायमला मन्ता**,' धम्मपद १८.७)। बौद्ध ग्रन्थों में श्लोक या गाथाएँ होती हैं, मन्त्र नहीं होते। अत: यह कथन वेदमन्त्रों के लिए ही है। मनुस्मृति, महाभारत, उपनिषद् आदि शास्त्रों के अनेक उद्धरण बुद्ध के प्रवचनों में मिलते हैं जिनका पालि भाषा में रूपान्तरण किया हुआ है। इस प्रकार बुद्ध के अनेक प्रवचन वैदिक शास्त्रों पर आधारित हैं।

३. गौतम बुद्ध की विरक्ति का एक कारण यज्ञों के नाम पर क्रूर बलिप्रथा, यज्ञ में पशु-पक्षियों की हिंसा, यज्ञ की आड़ में मांसाहार जैसा पाप था। यज्ञों में आई विकृतियों के कारण बुद्ध के प्रवचनों में यज्ञ के विधानों के प्रति कोई रुचि नहीं दिखाई देती। किन्तु यह भी वास्तविकता है कि उनके उपदेशों में यज्ञ का कोई विरोध नहीं है, अपितु पुण्य

के लिए किये यज्ञ की प्रशंसा है-

यो वेदगु जानरतो सतीमा सम्बोधि पत्तो सरनम बहूनां।
कालेन तं हि हव्यं पवेच्छे यो ब्राह्मणो पुण्यपेक्षो यजेथ।

(सुत्तनिपात, गाथा ५०३)

अर्थ- 'जो वेदों का विद्वान् सत्यचरित्र, ज्ञानवान्, अधिक से अधिक लोगों को शरण देने वाला हो। ऐसा ब्राह्मण यदि पुण्य के लिए यज्ञानुष्ठान करे तो उसका उस समय हव्य-कव्य से सम्मान करे।'

हाँ, यह अवश्य है कि जैसे धर्मशास्त्रों में बाह्य क्रियाओं की अपेक्षया आन्तरिक ध्यान आदि को तुलनात्मक रूप से उत्तम माना है, उसी प्रकार बुद्ध ने यज्ञ आदि की अपेक्षा निर्मल मन-आचरण को उत्तम माना है। उसका मूल कारण उनके मन पर तत्कालीन विकृत यज्ञों का प्रभाव है।

४. समीक्षकों का एक वर्ग बौद्ध मत को अनीश्वरवादी और अनात्मवादी मानता है। एक वर्ग ऐसा नहीं मानता। इस वर्ग का मानना है कि गौतम बुद्ध ने आचरण की शुद्धता को मुख्य उद्देश्य बनाया था, अतः ईश्वर, आत्मा और सृष्टि जैसे जटिल विषयों को अपना विवेच्य विषय नहीं बनाया। इन विषयों पर वे मौन रहे, विरोधी नहीं थे। विरोध का विवाद परवर्ती अनुयायी विद्वानों ने खड़ा किया है। उत्तर काल में आकर कई बौद्ध सम्प्रदाय स्वयं भी ईश्वरवादी बन गये और बुद्ध को ही ईश्वर मानकर पूजा करने लगे। बुद्ध के उपदेशों में कई स्थल ऐसे मिलते हैं जहाँ वे ईश्वर और जीवात्मा की सत्ता को स्वीकार करते हुए दिखाई पड़ते हैं। इसकी पुष्टि में दो गाथाओं के चरणों को प्रस्तुत किया जा सकता है-

''**गहकारं गवेसन्तो दुक्खा जाति पुनप्पुनं।**''
''**गहकारक दिट्ठोसि पुन गेहं न काहसि।**''

(धम्मपद ११.८,९)

अर्थात्- 'हे मेरे शरीर रूपी घर के स्रष्टा! तुम्हारी खोज की चाहत में मैंने दुःख-पूर्ण जन्म पुनः-पुनः लिया है। हे मेरे शरीर रूपी घर को बनाने वाले! अब मैंने तुम्हारा साक्षात् कर लिया है, अब मैं इस शरीर को धारण नहीं करूंगा।' भाव बड़ा स्पष्ट है। शरीर का स्रष्टा ईश्वर होता है और उसके दर्शन से जन्म-मरण रूप दुःख से द्रष्टा मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार बुद्ध के उपदेशों में आत्मा, प्रज्ञा, मन, चित्त का पृथक् और स्पष्ट उल्लेख है। वैदिक शास्त्रों में आये-

''**आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथात्मनः**''

(मनु. ८.८४)

''**उद्धरेदात्मनात्मानम्**'' आदि वाक्यों की आत्मा-परमात्मा-परक सही व्याख्या की हुई मिलती है, किन्तु बौद्ध साहित्य में इनके पालि में रूपान्तरित पद्यों-

''**अत्ता हि आत्मनो नाथो अत्ता हि आत्मनो गतिः**'' (२५.२१), ''**अत्तना चोदयेदत्तानम्**'' (२५.२०) की उपव्याख्या की जाती है। बौद्ध मत को अनीश्वरवादी-अनात्मवादी दिखाने के लिए 'आत्मा' शब्द की 'अपना' यह गलत व्याख्या की जाती है, 'आत्मा' को लुप्त कर दिया जाता है।

बहुत समय तक आर्य, पौराणिक हिन्दू और बौद्ध साथ-साथ रहे। बुद्ध के सुधारों से पौराणिकों की आजीविका, इन्द्रियलिप्सा, विलासिता, वर्चस्व पर दुष्प्रभाव पड़ने लगा, दलितों-पिछड़ों, स्त्रियों की समानता, शिक्षा आदि से पौराणिक आहत हुए। दूसरी ओर बौद्ध स्वयं को आर्य (हिन्दू) समुदाय से पृथक् स्वतन्त्र समुदाय बनने के उपाय कर रहे थे। दोनों वर्गों के मध्य हुए वैचारिक, दार्शनिक, सामाजिक, आहंकारिक संघर्षों ने दो बड़े समुदायों को विघटित कर दिया। आर्य समुदाय में बने रहते तो इसकी विखण्डन की क्षति नहीं होती। एक समुदाय होता, एक संगठनात्मक शक्ति होती, एक समुदाय के सहभागी अनेक राष्ट्र होते, किन्तु अदूरदर्शिता और संकुचित विचारों के कारण ऐसा न हो सका। इसके हानिकारक परिणामों को भविष्य में दोनों समुदायों को भुगतना पड़ेगा। उससे बचने के लिए आज भी फिर से एक समुदाय बनकर संगठित रह सकते हैं। आज जब घोर नास्तिक कम्युनिस्ट, आर्य, सनातनी आदि एक हिन्दू समुदाय में सहभाव से रह सकते हैं तो बौद्ध, जैन आदि समुदायों के रहने में तो कोई आपत्ति ही नहीं है।

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

राजा और प्रजाजन परस्पर सम्मति से समस्त राज्य व्यवहारों की पालना करें।-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ६.२६

मृत्यु सूक्त-३०

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर

लेखिका - सुयशा आर्य

परोपकारिणी सभा के पूर्वप्रधान डॉ. धर्मवीर जी के वेद-विज्ञान के अन्तर्गत प्रसारित व्याख्यानों की जनोपयोगिता को ध्यान में रखकर 'परोपकारी' में प्रकाशित किया जा रहा है। व्याख्यानों के लेखन का कार्य उनकी ज्येष्ठ पुत्री सुयशा आर्य कर रही हैं। सम्पादक

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम्।
शतं जीवन्तु शरदः पुरुचीऽन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन।।

हम इस वेद ज्ञान की चर्चा में ऋग्वेद के १० वें मण्डल के १८ वें सूक्त की चर्चा कर रहे हैं और उसके चौथे मन्त्र के पूर्व भाग को हमने पहले देखा था- **इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि**। अर्थात् मनुष्य इस गतिशील संसार में आया है, जहाँ सब कुछ गतिशील है, सब कुछ चलायमान है। जब भी कोई चीज रुकती है, तो पिछला प्रवाह आकर उसको टकराता है, उसको आगे धक्का देता है आगे निकालने के लिए बाध्य करता है। वैसे ही हमारे जीवन का प्रवाह आगे चलकर मृत्यु में बदल जाता है। मन्त्र कहता है कि जो मृत्यु का प्रवाह है, इसमें व्यतिक्रम न हो। इसमें ऐसा न हो कि जो बाद में आया है वो पहले जाये। ऐसा केवल तब हो सकता है जब उसमें कोई त्रुटि हो, कोई कमी हो। जैसे आप किसी नई गाड़ी को लेकर के चले और कोई चीज टकरा गई, किसी गड्ढे में गिर गई, पहाड़ से, पत्थर से टक्कर हो गयी तो बिल्कुल ठीक होने पर भी खराब हो गयी। नयी होने पर भी टूट गयी। इसलिए कहता है कि यह दुर्घटना न हो। हमारे अन्दर कोई कमी न हो, कोई अंग कम न हो, कमजोर न हो, दुर्बल न हो, किसी चीज का अभाव न हो, हम जैसे आये हैं उसी क्रम से बढ़ें, उसी क्रम से जीवित रहें, उसी क्रम से हम जायें।

वो कौन सी चीजें है जो हमें जीवित रखती हैं? कहता है- **अन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन**। इस मृत्यु से आप छिप सकते हो, नियम है कि यदि कोई चीज सामने है, वह दिखाई न दे जिससे इसके लिए बीच में कोई व्यवधान हो जाये, पर्दा आ जाये, कोई ऊँची चीज आ जाये जिससे बाद की चीज दिखाई न दे। वो दीवार हो सकती है, पत्थर हो सकता है, वो पहाड़ हो सकता है, बीच में कोई व्यवधान हो सकता है। तो यहाँ पर कहता है- **अन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन**। आप कुछ ऐसा करो जिससे आपकी मृत्यु आपसे ओझल हो। वह उपाय 'पर्वत' हो सकता है। पर्वत यहाँ ऊँचे व्यवधान का नाम है। जैसे दूर की कोई वस्तु हमारे सीधे सामने थी लेकिन बीच में कोई बाधा आ गई, ऊँचाई आ गयी, टीला आ गया, पहाड़ आ गया तो हमको दिखाई नहीं देता। वैसे ही यह मृत्यु और हमारा जो जीवन है इसके बीच में पर्वत हो। अब वह पर्वत क्या हो सकता है, इस पर विद्वानों ने विचार किया कि जो नियम हैं इस शरीर को चलाने के, उन नियमों से यदि आप चलते हैं तो आप अपनी इच्छा के अनुसार आयु को बढ़ा सकते हैं। वह पर्वत क्या? तो सबसे मोटे रूप में लोगों ने जो अध्ययन किया, उन्होंने कहा 'ब्रह्मचर्य'। कहता है ब्रह्मचर्य जीवन को बढ़ाने वाला होता है। मृत्यु वास्तव में तो कुछ नहीं है, हमारी सक्रियता का अभाव है। हमारी क्रियाशीलता की समाप्ति है। जब हमारे शरीर के उपकरण काम नहीं करते, दुर्बल हो जाते हैं, निष्क्रिय हो जाते हैं, निस्तेज हो जाते हैं, तब हमारे प्राण चले जाते हैं, प्राणपखेरु उड़ जाते हैं, मृत्यु हो जाती है।

उसको कैसे रोकेंगे? तो कहता है, समर्थ बनाकर, **अन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन,** बीच में एक व्यवधान खड़ा करके। वह व्यवधान, जो मृत्यु की ओर ले जाने की बजाय मनुष्य को जीवन की ओर ले जाये। उसकी जो क्षीणता है, वह क्षीणता कम हो, रुके, अच्छाई व स्वास्थ्य

बढ़े तो इसके लिए उपाय करने का विधान है, तब हमारी इच्छा से हम मृत्यु को प्राप्त होते हैं। ऐसा तो हमारे इतिहास में भीष्म के जीवन में आता है या ऋषि दयानन्द के जीवन में आता है। जब उन्होंने कहा कि ठीक है, आज मृत्यु को प्राप्त होना है, तो बैठकर मृत्यु को प्राप्त हो गए। भीष्म ने कहा कि नहीं, अभी नहीं मरना ६ महीने बाद मरना है, ६ महीने बाद मरे।

हमारे जीवन को हम ऐसा चलायें कि हमारे पास बलपूर्वक मृत्यु न आये। इसके लिए मनु ने एक बहुत अच्छा श्लोक लिखा है-कि मृत्यु ने सबको ग्रास बना लिया, लेकिन वो ब्रह्मचारी के पास जाना चाह रही थी, जा ही नहीं पा रही थी। कैसे जाये? वह मृत्यु का ग्रास कैसे बने? तो कहा कि बहुत खाने से। यदि कोई व्यक्ति बहुत खाता है तो जल्दी ही मृत्यु को प्राप्त होता है। **मृत्यु विप्रान् जिघांसति।** मृत्यु, विद्वान् को, ब्रह्मचारी को **जिघांसति**, मार डालती है। उसको एक अवसर मिल जाता है, जब मनुष्य अनियमित हो जाता है, जो व्यवस्था है उसके विपरीत चलता है तो अधिक खाने से और अनियमित रहने से मृत्यु निश्चित आती है तो उसको छुड़ाने का उपाय क्या है- कहता है **'पर्वतेन'**।

हमको मृत्यु को दूर रखना है। दो बातें इस मन्त्र में कही हैं, पहली यह कि मृत्यु क्रम से आ जाए तो कोई आपत्ति नहीं है और दूसरी यह है कि उस क्रम को ठीक बनाये रखने के लिए क्या करें, तो कहा कि हमें यम, नियम, संयम, इसका पालन करना चाहिए। जैसा हमने पीछे बताया है कि जो ऊर्जा प्रतिदिन प्राप्त हो रही है और जो प्रतिदिन व्यय हो रही है, इसमें तारतम्य बना रहे। वह ऊर्जा भोजन से प्राप्त होती है, वह ऊर्जा निद्रा से प्राप्त होती है, वह ऊर्जा स्वच्छ वातावरण से, श्वास-प्रश्वास से प्राप्त होती है। हमारे पास ऊर्जा के जो उपाय हैं ये सारे ही उपाय हमारे ठीक होने चाहिए।

मोटे रूप में हमको लगता है कि जैसे हमें भोजन से ऊर्जा मिलती है, भोजन से, पानी से ऊर्जा मिलती है, लेकिन यदि सोयें नहीं तो? या हम सोते ही रहें तो भी क्या ऊर्जा बढ़ती रहेगी? ऐसा नहीं होता है। उससे तो आलस्य और प्रमाद बढ़ता है, अनिच्छा बढ़ती है, अनुत्साह बढ़ता है। हम ऊर्जा का व्यय करेंगे, तो ऊर्जा प्राप्त करने का उत्साह बनेगा। ऊर्जा का प्रवाह हमारी ओर तब होगा जब हमने ऊर्जा को समाप्त किया होगा, काम में लिया होगा। इसलिए हमें नींद तब आती है जब हम थक जाते हैं। जब खूब परिश्रम करते हैं, तब हमें नींद भी उतनी ही अधिक आती है, उतनी ही अच्छी आती है। यह नींद हमें ऊर्जा प्रदान करती है, चेतना प्रदान करती है, उत्साह प्रदान करती है।

हम वायु के द्वारा भी सतत ऊर्जा को प्राप्त करते हैं, निरन्तर ऊर्जा को प्राप्त करते हैं। तो ऊर्जा को प्राप्त करने के हमारे अलग-अलग सोपान हैं। उनके द्वारा हम ऊर्जा प्राप्त कर रहे हैं और उसको काम में लेकर के ऊर्जा को व्यय कर रहे हैं। ऊर्जा इस तरह से व्यय नहीं होनी चाहिए कि हमारे पास अर्जन नहीं हो और व्यय हो जाए। परमेश्वर ने हमारे शरीर में यह व्यवस्था की हुई है कि हम जितना-जितना काम करते हैं, हमारी ऊर्जा का संग्रह काम में आता है, उसके द्वारा हम निरन्तर उत्साह में बने रहते हैं। इसलिए हमको ऊर्जावान् होने के लिए निरन्तर इन नियमों का विचार करना चाहिए, चिन्तन करना चाहिए, पालन करना चाहिए।

परमेश्वर ने मनुष्य को जहाँ भोजन की बात कही है, वहाँ नींद की भी बात कही है और प्राणायाम के द्वारा प्राण ऊर्जा को बढ़ाने की भी बात कही है। इसलिये जो आयु को बढ़ाने वाले हैं वे प्राणायाम को बढ़ाते हैं। प्राण का आयाम अर्थात् विस्तार। और जो लोग ये कहते हैं कि मनुष्य की आयु उसकी श्वास की गणना पर निर्भर करती है, उसकी गिनती पर निर्भर करती है। इसलिए लोग कहते हैं कि हमको तो उतने साँस जीना है, तो वह साँस प्राणायाम से हम बढ़ा देंगे। एक बार श्वास लेने में जितना समय लगता है उसका १० गुना कर देंगे, उसका २० गुना कर देंगे तो हमारी आयु उतनी ही विस्तृत हो जाएगी, उतनी बड़ी और लंबी हो जाएगी।

इस दृष्टि से हमें आयु के साधनों को यहाँ समझने के लिए कहा है, जानने के लिए कहा है और उनके द्वारा हम अपनी मृत्यु को दूर कर सकते हैं, हटा सकते हैं।

इमं जीवेभ्य: परिधिं दधामि- कहता है, मैंने जीवों

के लिए यह परिधि बनाई है, यह सीमा बनाई है। **मैषां नु गादपरो अर्थमेतम्**- इसको कौन लांघेगा, कौन नहीं लाँघेगा? जो व्यक्ति समझता है, जानता है, वह मृत्यु को अपनी सीमा में नहीं आने देगा। **अन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन**- वह अपने श्रेष्ठ आचरण के द्वारा मृत्यु को अपने से दूर रखता है, अपने से ओझल रखता है। इसमें एक और रोचक बात लिखी है- **शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीः**- हमारे यहाँ आयु को ऋतुओं से गिना गया है। जैसे-

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम्।

यहाँ शरद ऋतु का वर्णन है। एक जगह लिखा है-

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्तान् शतमो वसन्तान् शतम् इन्द्राग्नी सविता बृहस्पति।

यहाँ पर शरद, हेमन्त आदि ऋतुओं को गिना है। इस मन्त्र में भी यही कह रहा है- **शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीः।** कहता है कि सौ शरद ऋतुओं तक हम जीवित रहें।

लेकिन जीवित कैसे रहें? केवल साँस लेते रहें इसको जीवन नहीं कहते। रोगी रहें, बीमार रहें, असमर्थ रहें, मूर्ख रहें, इसको जीवन नहीं कहते। मन्त्र में कहा है कि हम सुखी होकर, स्वस्थ होकर, सक्रिय और उत्साहवान् होकर अपना जीवन जीयें इसलिए मन्त्र ने कहा- **शतं जीवन्तु शरदः पुरूची**। हम इन सौ वर्षों को सुखपूर्वक जीयें, आनन्दपूर्वक जीयें। हमारे जीवन से हमें निराशा न हो, अनुत्साह न हो, हताशा न हो।

इस पूरे मन्त्र में दो भागों में दो उपायों की चर्चा है। पहले में उन्होंने बताया कि हमें अपने जीवन में आने का क्रम, व्यवस्था पता होनी चाहिए और हमें उस व्यवस्था का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। अर्थात् जीवन को ऐसे बिताना चाहिए कि जिससे व्यवस्था का उल्लंघन न हो और वह जो जीवन हमको मिले, उसमें हमारे अन्दर वह व्यवस्था पैदा करने का सामर्थ्य हो कि हम मृत्यु को दूर कर सकें, मृत्यु को अपने से हटा सकें। और मृत्यु को हटाने मात्र से ही हमको दीर्घजीवी नहीं होना है, इतने मात्र को हम जीवन नहीं मानते बल्कि **शतं जीवन्तु शरदः पुरूची**- हम जीयें, सौ वर्ष तक जीयें और सुखपूर्वक जीयें, यही इस वेद मन्त्र का सन्देश है।

लेखकों से निवेदन

- लेखक कृपया अपने मौलिक व अप्रकाशित लेख ही भेजें।
- लेखक अपना पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या लेख के साथ अवश्य लिखें।
- परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।
- अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटाई नहीं जाती हैं।
- रचना के प्रकाशन में छः माह या अधिक समय भी लग सकता है, अतः कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें।
- स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। -**संपादक**

गुरुकुल के लिये प्रवेश-सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान-अजमेर में वैदिक धर्म एवं आर्यसमाज के उपदेशक तैयार करने हेतु उपदेशक कक्षा में प्रवेश प्रारम्भ हैं।

प्रवेशार्थी की न्यूनतम आयु १४ वर्ष तथा कक्षा आठ या उससे अधिक उत्तीर्ण हो। आर्ष-पद्धति से व्याकरण, दर्शन तथा महर्षि निर्दिष्ट पाठ्यक्रम के अध्यापन की व्यवस्था है।

गुरुकुल में अध्यापन, भोजन एवं आवास की निःशुल्क व्यवस्था है।

प्रवेश के इच्छुक अभ्यर्थी सम्पर्क करें-

आचार्य, आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर रोड, अजमेर।

दूरभाष- ९८७९५८७७५६

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

जहाँ कहीं भी, जब कभी पिछले कुछ मास में इस सेवक की किसी छोटे-बड़े ऋषि भक्त, विद्वान् और उत्साही युवक से भेंट हुई तो मिलने वाले एक-एक भाई से निवेदन किया कि इस वर्ष को **स्वामी श्रद्धानन्द शौर्य शताब्दी वर्ष** के रूप में मनाने के लिये कटिबद्ध हो जाओ। आर्यजगत् के मूर्धन्य विद्वान् डॉ. वेदपाल जी प्रधान परोपकारिणी सभा ने जिस प्रेम, श्रद्धा व उत्साह से इस सुझाव का स्वागत किया वह मैं ही जानता हूँ। कुछ युवकों ने सुझाव दिया कि लोकसभा के चुनाव की सारी प्रक्रिया पूरी होने के पश्चात् ही कार्यक्रम रखे जाने चाहियें तथापि पंजाबी की एक लोकोक्ति ''माँ! माँ!! मैं रह न सकाँ'' अर्थात् माँ! मैं क्या करूँ मेरे से रुका नहीं जाता। मन में विचार आया जलियाँवाला के रक्तिमकाण्ड तक यदि हमने इस दिशा में कुछ न किया तो धर्मवीर डॉ. सत्यपाल जी, कर्मवीर बलिदानी महाशय रत्तो, हुतात्मा भागमल की वीराङ्गना देवी **पूज्या माता रत्नदेवी**, अमर हुतात्मा हरिराम, उनकी **वीराङ्गना देवी रत्नदेवी**, हुतात्मा भागमल, चौधरी रामभजदत्त, अमर क्रान्तिकारी लाला पिण्डीदास, पत्रकार शिरोमणि महाशय कृष्ण, आचार्य चमूपति का नाम लेने का हमको फिर क्या अधिकार होगा? उन प्राणवीरों से द्रोह का कलङ्क आर्यसमाज पर नहीं लगना चाहिये।

जलियाँवाला बाग काण्ड के हीरो पूज्य डॉ. सत्यपाल की मोहनी मूर्ति, श्रद्धेय महाशय रत्तो, महाशय कृष्ण जिनके दर्शन करने का मुझे खूब सौभाग्य प्राप्त रहा-ये सब पुण्यात्मायें झकझोरतीं थीं कि चुप मत बैठो, कुछ तो हिलो-डुलो और कुछ करो।

यह गौरव और सन्तोष का विषय है कि परोपकारिणी सभा ने इस शौर्य शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में 'कुल्लियाते आर्य मुसाफ़िर' के दोनों भागों का प्रकाशन करके आर्यसमाज की शोभा बढ़ाई। इस पर्व का ध्यान करके घोर व्यस्तताओं के होते हुये आर्यसमाज के महाधन का सम्पादन दिन-रात एक करके समय पर दे दिया।

ऋषिवर का सबसे पहला अनूठा पत्र-व्यवहार जिसे महान् श्रद्धानन्द ने सन् १९१० में पहली बार प्रकाशित करवाया। उसका मूल्याङ्कन करते हुये तीस पृष्ठ के प्राक्कथन के साथ इसी श्रद्धानन्द शौर्य शताब्दी वर्ष पर प्रेस में भिजवा दिया। कुछ ही दिनों में यह प्रेरणाप्रद ऐतिहासिक ग्रन्थ आर्य जनता के हाथों में होगा। आर्य जाति का इससे गौरव बढ़ेगा।

परोपकारिणी सभा के प्रधान श्रीमान् डॉ. वेदपाल जी ने 'शौर्य शताब्दी वर्ष' महापर्व की महिमा को समझते हुए देश के, समाज के एक निर्माता मास्टर आत्माराम जी के जीवन-चरित्र के प्रकाशन की दिशा में पग बढ़ाया।

आज देश तो क्या आर्यसमाज ही यह भूल चुका है कि महात्मा स्वतन्त्रानन्द जी का भी इस रक्तिम काण्ड से सम्बन्ध था। महाराज काँग्रेस के ऐतिहासिक अमृतसर अधिवेशन में सक्रिय भाग लेने वाले एक स्वतन्त्रता सेनानी थे। हरियाणा के साधु सुधानन्द जी (रेवाड़ी क्षेत्र वाले) तथा इन पंक्तियों के लेखक ने पूज्य स्वामी जी के श्रीमुख से अमृतसर के उस अधिवेशन के संस्मरण सुने थे। श्री महेन्द्रसिंह आर्य देवनगर के पुरुषार्थ से 'लौहपुरुष स्वतन्त्रानन्द ग्रन्थ' आर्य जाति को इस शौर्य शताब्दी वर्ष में शीघ्र प्राप्य होगा। यह ग्रन्थ श्री महेन्द्र सिंह के समाज सेवी पिताजी की स्मृति में छप रहा है और भी कुछ ग्रन्थ यथा ''**मैक्समूलर का एक्सरे**'' भी आर्यजनता के समक्ष प्रस्तुत होगा।

यहाँ जलियाँवाला हत्याकाण्ड से जुड़े विस्मृत इतिहास की बहुत संक्षेप से कुछ दर्दनाक घटनायें देते हैं-

रह-रहकर महाशय कृष्ण द्वारा वर्णित घटना याद आती है। शूरवीर महाशय रत्तो कालकोठरी में थे। कालेपानी का दण्ड सुनाया जा चुका था। पत्नी अपनी गोदी में पुत्र को उठाये हुए पति के दर्शन करने पहुँची। तभी महाशय कृष्ण जी को भी मिलने की अनुमति मिल गई। लोहे की सलाख़ों के पीछे से महाशय रत्तो ने पत्नी से कहा, ''पुत्र को महाशय कृष्ण जी की गोदी में दीजिये।'' हमने महाशय रत्तो के उस पुत्र को भी देखा है। देवी ने बेटा महाशय कृष्ण की गोदी में दे दिया। महाशय रत्तो ने कड़ा दिल

करके महाशय कृष्ण से कहा, ''अब मेरे पुत्र की रक्षा, लालन-पालन का भार आप पर होगा।'' जीवित लौटकर आने की तब आशा किसको हो सकती थी?

पं. चमूपति जी जलियाँवाला बाग गये। एक डिबिया में वहाँ की मिट्टी ली। उसके साथ जलियाँवाला बाग काण्ड विषयक अपनी रचनाओं का संग्रह अपने हाथ से लिखकर लाला लाजपतराय जी को लम्बे निष्कासन के पश्चात् स्वदेश लौटने पर भारत भूमि पर पग धरते समय भेंट किया था। उस संग्रह का नाम था 'खाके शहीदाँ'=हुतात्माओं की धूलि। हमने इसे देवनागरी में छपवाकर मिटने से बचा लिया। इस ऐतिहासिक संग्रह का एक ही पद्य यहाँ दिया जाता है-

क्या गिला मौत का मर-मर के थे जीते 'सादिक'
डायर अवतार था भारत को जिलाने आया

ध्यान रहे कि पं. चमूपति जी का उपनाम 'सादिक' था।

कोई वकील आतंक के कारण किसी अभियुक्त का केस न लड़ सकता था। वकील अभियुक्तों तक पहुँच ही न सकते थे। लाला गंगाराम आर्यनेता वकील थे। वह स्यालकोट से चौ. रामभजदत्त जी के बचाव के लिये जा रहे थे। उन्हें जाने से रोका गया। उन्होंने ताँगा किराये पर किया और लाहौर को चल पड़े। बलिहारी उन प्राणवीरों के!

महाशय कृष्ण गोरे अधिकारियों के जेल में आने पर खड़े नहीं होते थे। उन्हें जितना सताया जा सकता था। सताया गया। वे न दबे, न डरे और न गिड़गिड़ाये।

आर्य पुरुषो! आप भूल गये डॉ. सत्यपाल जी बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक काल के आर्यसमाज के अत्यन्त सुयोग्य व लोकप्रिय विद्वान् सुवक्ता व मिशनरी थे। आपके पिता जी को और आपको भी तब इकट्ठे कारागार में ठूँसा गया। पिता-पुत्र को इकट्ठा भी न होने दिया जाता था। कारागार में हुतात्मा गणेशदास जी स्यालकोटी ने उर्दू अनुवाद टीका सहित जो आर्याभिविनय का किया था, उसकी पठनीय भूमिका डॉ. सत्यपाल जी ने भक्ति-भावों में डूबकर लिखी थी। लाला पिण्डीदास ने १९०५ में लाहौर में आर्य साहित्य तथा राष्ट्रीय साहित्य के प्रकाशन के लिये अपना संस्थान स्थापित किया। उन्हें पाँच वर्ष तक कारागार में ठूँसा गया। १९११ में लाहौर से पुन: पुस्तक भण्डार के नाम से कार्य आरम्भ किया। सन् १९१५ में चार वर्ष के लिये कारण बताये बिना मियाँवाली की उजाड़ मरुभूमि में पुन: स्थानबद्ध किये गये। आप एक जाने-माने विद्वान्, साहित्यकार व पत्रकार थे। आपके कष्ट सहन की कहानी के बिना स्वराज्य संग्राम का इतिहास सर्वथा अधूरा है।

'शुद्धि समाचार' के लेख और स्वरूप- आर्यसमाज की संस्थायें हड़प की जा रही हैं। आर्यसमाज को अब संस्थाओं में कौन पूछता है? आर्यसमाज के मन्दिरों को बड़े-बड़े नगरों में मूल्यवान् सम्पत्ति जानकर कई व्यक्ति व संस्थायें हड़पना चाहते हैं और हड़प रहे हैं। कर्नाटक में श्रद्धानन्द भवन को कई बार डॉ. वर्मा जी ने बचाया अब भी क्या पूर्ण सुरक्षित है? राजस्थान में एक राजनीतिक व्यक्ति ने आर्य मन्दिर से आर्यसमाज को निकलने की धमकी दी। कई पत्र-पत्रिकायें अब वैदिक धर्म-प्रचार नहीं, पोंगापंथ का प्रचार कर रही हैं।

शुद्धि समाचार पर कभी दृष्टि डालें पता लगेगा कि यह आर्यसमाज का नहीं वेद विरोधी साप्ताहिक है।

वीर सावरकर जी पर लिखने वाले ने उनकी आत्मकथा में महर्षि व लाला साईंदास की चर्चा का उल्लेख तक नहीं किया। वीर सावरकर ही एक ऐसे राष्ट्रीय नेता थे जिन्होंने सर्वाधिक आर्य महापुरुषों व हुतात्माओं पर लिखा। सत्यार्थप्रकाश रक्षा आन्दोलन में खुलकर बोले। उन पर छपे लेख में इन बातों को छुआ तक नहीं गया। महाशय राजपाल जी पर गाँधी बापू के आक्षेपों का उत्तर दिया। शंकराचार्य पर छपा लेख भ्रामक और वैदिक धर्म विरोधी है। शंकराचार्य ने जगत् को मिथ्या बताया। वेद के पठन-पाठन का स्त्रियों व अन्यों का अधिकार छीना। जीव व प्रकृति की सत्ता स्वीकार ही नहीं की। शंकराचार्य के मठों में आज भी अस्पृश्यता है। कालड़ी में आपको साहित्य बिक्री स्टॉल पर वेद विषयक एक भी पुस्तक न मिलेगी। निरञ्जनदेव तीर्थ शंकराचार्य का लेख कल्याण में छपा कि ओ३म् केवल है केवल ही कर देगा अर्थात् ओ३म् का जप करने से घर में कोई न बचेगा। जहाँ-जहाँ शंकर मत का प्रचार व प्रभाव बढ़ा वहाँ-वहाँ जाति भेद, जन्माभिमान व

अस्पृश्यता बढ़ने से ईसाई व मुसलमानी मत का प्रचार बढ़ा। जीव को ब्रह्म का 'शुद्धि समाचार' में अंश बताया गया है फिर परमात्मा ने वेद का ज्ञान किसको दिया? कर्मफल सिद्धान्त व मोक्ष की चर्चा सब व्यर्थ की बातें हैं। गीता कहती है आत्मा के टुकड़े नहीं हो सकते। शुद्धि समाचार का लेखक परमात्मा के टुकड़े-टुकड़े करके असंख्य जीवों को ब्रह्म बता रहा है। जब सब जीव ब्रह्म हैं तो वैर, द्वेष और क्लेश क्यों है?

शंकराचार्य ने वैदिक धर्म-प्रचार को हानि ही पहुँचाई। वेद के सिद्धान्तों पर कौनसी पुस्तक लिखी? किसी भी शंकराचार्य ने किसी भी विधर्मी से कभी शास्त्रार्थ किया? किसी धर्मच्युत हुये हिन्दू को शुद्ध करके आर्य जाति का अंग न बनाया।

मैक्समूलर का संस्कृत ज्ञान- महर्षि दयानन्द जी महाराज ने मैक्समूलर के संस्कृत व वेद विषयक ज्ञान के बारे में यह मत दिया था कि जहाँ वृक्ष न हो वहाँ अरण्ड ही प्रधान होता है। विशाल साम्राज्य तथा चर्च के अपार साधनों के दुष्प्रचार से मैक्समूलर की विद्वत्ता की भारत में अंग्रेजी पठित लोगों में धूम मचा दी गई। कनाडा से हमारे अभिन्न बन्धु ने हमें जर्मन लेखक (भारतीय मूल के बंगाली) प्रोदोष ऐच का ग्रन्थ 'Lies with Long Legs' पढ़कर मैक्समूलर के सम्बन्ध में सच जानने की प्रेरणा दी। हमने अच्छी राशि व्यय करके झटपट यह दुर्लभ ग्रन्थ प्राप्त कर ही लिया।

"We remember he had never been in India. He did not know the difference between the Vedic language and Sanskrit. His Sanskrit was, at best poor. Where and when and how did he learn Sanskrit by copying manuscripts with tracing papers?" १ सारांश यह है कि वह कभी भारत आया ही नहीं। वेद की भाषा व संस्कृत में भेद का उसे ज्ञान नहीं था। उसका संस्कृत का ज्ञान नगण्य था-तुच्छ था। प्रतिलिपियाँ बनाते, पाण्डुलिपियों की खोज व नकल करते व संस्कृत का विद्वान् बन गया।

इसी ग्रन्थ में एक रोचक घटना पढ़ने को मिलती है। "I was sitting in my room at Oxford copying Sanskrit MSS, a gentleman was shown in, dressed in long black coat, looking different from my usual visitors, and addressing me in a language of which I did not understand a single word, I spoke to him in English, and asked him what language he was speaking, and replied with great surprise, "Do you not understand Sanskrit?" No, I said, I have never heard it spoken."२

इसका भाव यह है कि एक व्यक्ति मेरे पास आया। कुछ बोला। मैं कुछ न समझ सका। पूछा, क्या भाषा बोल रहे हो। उसने कहा, क्या तुम संस्कृत नहीं जानते। मैंने कहा, कभी किसी को बोलते नहीं सुना। संस्कृत बोलने वाला मैक्समूलर द्वारा प्रशंसित ब्राह्मण पादरी नीलकण्ठ शास्त्री था। यह कथन मैक्समूलर का अपना है। अंग्रेज़ी पठित लोगों ने मैक्समूलर के नाम पर इस देश को खूब ठगा।

१-२ Lies with Long Legs page 376 and 383.

राजा और प्रजा सब लड़के-लड़कियों को विद्वान् बनाने का प्रयत्न करें

आजकल के सम्प्रदायी और स्वार्थी ब्राह्मण आदि जो दूसरों को विद्या-सत्संग से हटा और अपने जाल में फँसा के उनका तन, मन, धन नष्ट कर देते हैं और चाहते हैं कि जो क्षत्रियादि वर्ण पढ़कार विद्वान् हो जायेंगे तो हमारे पाखण्ड जाल से छूट और हमारे छल को जानकर हमारा अपमान करेंगे। इत्यादि विघ्नों को राजा और प्रजा दूर करके अपने लड़कों और लड़कियों को विद्वान् करने के लिए तन, मन, धन से प्रयत्न किया करें।

(स. प्र. स. ३)

मूर्त्तिपूजा-विवेचन

पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय, एम.ए.

प्रश्न- देखो! वेद अनादि हैं, उस समय मूर्ति का क्या काम था? क्योंकि पहले तो देवता प्रत्यक्ष थे! यह रीति तो पीछे से तन्त्र और पुराणों से चली है। जब मनुष्यों का ज्ञान और सामर्थ्य न्यून हो गया तो परमेश्वर को ध्यान में नहीं ला सके और मूर्त्ति का ध्यान तो कर सकते हैं, इस कारण अज्ञानियों के लिये मूर्त्तिपूजा है, क्योंकि सीढ़ी-सीढ़ी से चढ़े तो भवन पर पहुँच जाय। पहली सीढ़ी छोड़कर ऊपर जाना चाहे तो नहीं चढ़ सकता। इसलिये मूर्त्ति प्रथम सीढ़ी है। इसको पूजते-पूजते जब ज्ञान होगा और अन्त:करण पवित्र होगा तब परमात्मा का ध्यान कर सकेगा। जैसे लक्ष्य का मारने वाला प्रथम स्थूल लक्ष्य में तीर, गोली या गोला आदि मारता-मारता पश्चात् सूक्ष्म में भी निशाना मार सकता है वैसे स्थूल मूर्ति की पूजा करता-करता पुन: सूक्ष्म ब्रह्म को भी प्राप्त होता है। जैसे लड़कियाँ गुड़ियों का खेल तब तक करती हैं कि जब तक सच्चे पति को प्राप्त नहीं होतीं, इत्यादि प्रकार से मूर्तिपूजा करना दुष्ट काम नहीं।

उत्तर- जब वेदविहित धर्म और वेदविरुद्धाचरण में अधर्म है तो पुन: तुम्हारे कहने में भी मूर्तिपूजा करना अधर्म ठहरा। जो-जो ग्रन्थ वेद के विरुद्ध हैं, उन-उन का प्रमाण करना जानो नास्तिक होना है। सुनो-

नास्तिको वेदनिन्दक:।। १।। (मनु: २/११)

या वेद बाह्या: स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टय:।
सर्वास्ता निष्फला: प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ता: स्मृता:।।२।।
उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित्।
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च।।३।।

मनु. अ. १२ [९५-९६]

मनु जी कहते हैं कि जो वेदों की निन्दा अर्थात् अपमान, त्याग, विरुद्धाचरण करता है, वह नास्तिक कहाता है।।१।। जो ग्रन्थ वेदबाह्य, कुत्सित पुरुषों के बनाये संसार को दु:ख सागर में डुबाने वाले हैं वे सब निष्फल, असत्य, अन्धकार रूप, इस लोक और परलोक में दु:खदायक हैं।।२।। जो इन वेदों के विरुद्ध ग्रन्थ उत्पन्न होते हैं, वे आधुनिक होने से शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। उनका मानना निष्फल और झूठा है।।३।। इसी प्रकार ब्रह्मा से लेकर जैमिनि महर्षि पर्यन्त का मत है कि वेदविरुद्ध को न मानना किन्तु वेदानुकूल ही का आचरण करना धर्म है। क्योंकि वेद सत्यार्थ का प्रतिपादक है। इससे विरुद्ध जितने तन्त्र और पुराण हैं, वे वेदविरुद्ध होने से झूठे हैं जो कि वेद से विरुद्ध पुस्तकें हैं, इनमें कही हुई मूर्ति पूजा भी अधर्मरूप है। मनुष्यों का ज्ञान जड़ की पूजा से नहीं बढ़ सकता किन्तु जो कुछ ज्ञान है वह भी नष्ट हो जाता है। इसलिए ज्ञानियों की सेवा-संग से ज्ञान बढ़ता है, पाषाणादि से नहीं। क्या पाषाणादि मूर्ति पूजा से परमेश्वर को ध्यान में कभी ला सकता है? नहीं! नहीं!! मूर्ति पूजा सीढ़ी नहीं, किन्तु एक बड़ी खाई है जिसमें गिरकर चकनाचूर हो जाता है। पुन: उस खाई से निकल नहीं सकता किन्तु उसी में मर जाता है। हाँ, छोटे धार्मिक विद्वानों से लेकर परम विद्वान् योगियों के संग से सद्विद्या और सत्यभाषणादि परमेश्वर की प्राप्ति की सीढ़ियाँ हैं। जैसे ऊपर घर में जाने की नि:श्रेणी होती है। किन्तु मूर्तिपूजा करते-करते ज्ञानी तो न हुआ प्रत्युत सब मूर्तिपूजक अज्ञानी रहकर मनुष्य जन्म व्यर्थ खोकर के बहुत-बहुत से मर गये और जो अब हैं वा होंगे वे भी मनुष्य जन्म के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्तिरूप फलों से विमुख होकर निरर्थ नष्ट हो जायेंगे। मूर्तिपूजा ब्रह्म की प्राप्ति में स्थूल लक्ष्यवत् नहीं किन्तु धार्मिक विद्वान् और सृष्टि विद्या है। इसको बढ़ाता-बढ़ाता ब्रह्म को भी पाता है और मूर्ति गुड़ियों के खेलवत् नहीं किन्तु प्रथम अक्षराभ्यास सुशिक्षा का होना गुड़ियों के खेलवत् ब्रह्म की प्राप्ति का साधन है। सुनिये! जब अच्छी शिक्षा और विद्या को प्राप्त होगा तब सच्चे स्वामी परमात्मा को भी प्राप्त हो जायगा।

(सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास ११)

उपासकों के दो वर्ग हैं। एक जो मूर्तिपूजा को उपासना का साधन समझते हैं और दूसरा वह वर्ग है जो मूर्तिपूजा को न केवल ईश्वरोपासना का ही बाधक समझता है अपितु

सब प्रकार की मनुष्य की उन्नति का घोर बाधक मानता है।

ऋषि दयानन्द ने ऊपर दिये प्रश्न और उत्तर में समासरूप में दोनों पक्षों की युक्तियों को बड़ी उत्तमता से वर्णन कर दिया है। इनमें उन सब युक्तियों का समावेश है जो समय-समय पर मूर्तिपूजक विद्वान् दिया करते हैं। आधुनिक काल में मूर्तिपूजा के अभ्यस्त कुछ कुछ साइंस और दर्शन के सुविज्ञ भी अपनी चिरकाल की प्रवृत्तियों के वशीभूत होकर मूर्तिपूजा को संसार में जीवित रखने के लिए बाल की खाल निकालते पाये जाते हैं। अधिकांश पुजारियों की जीविका ही मूर्तिपूजा पर चलती है। ये पुजारी न केवल सच्ची पूजा (ईश्वरोपासना) के ही 'अरि' अर्थात् शत्रु हैं अपितु स्वयं निठल्ला जीवन व्यतीत करने और मूर्तिपूजकों की कमाई को अनुचित रीति से खाने के कारण मानवसमाज के भी बैरी हैं। इसलिए मूर्तिपूजा केवल अज्ञानियों के लिए ही नहीं है अपितु बड़े से बड़े विद्वान् भी इस कीचड़ में फँसे पाये जाते हैं। स्वामी दयानन्द ने इसको खाई कहा है। यह सत्य ही है, इसमें चकनाचूर होते स्वामी दयानन्द ने भी बड़े-बड़े पण्डितों को देखा और आप भी देख सकते हैं। किसी मन्दिर में चले जाइये। बड़े-बड़े विद्वान् प्रोफेसर, जज, मिनिस्टर, संस्कृतज्ञ, महावैयाकरण, नैयायिक, वेदान्ती, याज्ञिक, वकील-बैरिष्टर नंगे पैरों, हाथों में माला लिए उसी प्रकार मूर्ति के समक्ष दण्डवत् करते पाये जायेंगे जैसे गाँवों के अपढ़ अज्ञानी। यदि मूर्तिपूजा ब्रह्म प्राप्ति की पहली सीढ़ी होती तो आज इन वृद्ध और समृद्ध जनों को पत्थरों के समक्ष सिर नवाने की आवश्यकता न होती। आज बड़े-बड़े महापुरुषों की अस्थियाँ गंगा में प्रवाहित होने के लिये जाती हैं कि गंगा माई उनको स्वर्ग पहुँचा देगी। स्वामी दयानन्द ने तो जड़ गंगा द्वारा स्वर्ग-प्राप्ति की इच्छा नहीं की थी। क्या काशी के महापण्डित जिनको अपनी परा और अपरा विद्याओं का गर्व है विश्वनाथ की मूर्ति के समक्ष माथा टेकते हुये गुड़ियों की उपमा को भूल जाते हैं? क्या कोई प्रौढ़ा स्त्री छोटी लड़कियों की भाँति अपने पति के स्थान में और उसके समक्ष एक गुड्डे को आरोपित करना पसन्द करेगी? क्या समग्र आयु मूर्तियाँ पूजते भी अभी इनको इतना ज्ञान नहीं हुआ कि जिस ब्रह्म की प्राप्ति के लिए वे देवताओं की जड़ मूर्तियों का सहारा तकते हैं, उनके भवन में, उनके शरीर और मन में भी ईश्वर विद्यमान है। मूर्तिपूजा रूपी खाई में जो एक बार गिरा उसका निकलना कठिन है, यही तो ऋषि दयानन्द ने कहा था। जिन बौद्ध और जैनियों ने ईश्वर के कर्तृत्व से भी इन्कार कर दिया, वह भी मूर्तिपूजा के गढ़े में पड़कर जैन मन्दिरों और बौद्ध मठों में जड़ मूर्तियों में मान्यता मानते देखे जाते हैं। जो ईसाई और मुसलमान मूर्ति भंजक कहलाना पसन्द करते हैं वह भी अनेक कष्ट सहकर मक्के के मन्दिर में काले पत्थर को चूमते और मन्दिर की परिक्रमा करते तथा ईसा आदि की मूर्तियाँ पूजते पाये जाते हैं। इसका एक मुख्य कारण यही है कि उन्होंने मूर्तिपूजा को ब्रह्म उपासना का साधन या स्थानापन्न समझ रखा है। वे समझते हैं कि जब पत्थर का दर्शन ही देव-दर्शन है तो देव-दर्शन के लिये योग का साधन व्यर्थ है।

स्वामी दयानन्द लिखते हैं कि ब्रह्म-प्राप्ति की पहली सीढ़ी है अक्षराभ्यास अथवा विद्या-प्राप्ति। इस अर्थ में तो प्रत्येक छोटी-बड़ी पाठशाला मन्दिर है। वहाँ ज्ञान की वृद्धि होती है, प्रत्येक विज्ञान-प्रयोगशाला शिवालय है क्योंकि यहाँ परम कल्याण के दाता शिव के नियमों का परिज्ञान होता है। जितना धन और श्रम एक छोटे देवालय पर होता है, उतना एक पाठशाला के लिए पर्याप्त है। रामेश्वर या श्रीरङ्गम के मन्दिर पर जितना व्यय होता है उतने से विश्वविद्यालय चल सकते हैं, परन्तु जनता तथा नेताओं की शक्ति का परिशोषण तो मूर्तिपूजा कर रही है। जनता की गाढ़ी कमाई तो पाषाणमय कल्पित देवी-देवताओं के शृङ्गार और उनके खाऊ पुजारियों की उदरपूर्ति में ही लग जाती है। एक बार एक दक्षिणी प्रसिद्ध मन्दिर के एक अध्यक्ष ने मुझ से प्रश्न किया था कि हमारे विशाल मन्दिरों को देखकर क्या अनुमान किया। मैंने उत्तर दिया, "They are physical dark morally dark and socially dark. अर्थात् यह प्राकृतिक-तमोमय, आचारतमोमय और सामाजिक अन्धकार से भरपूर हैं। उन्होंने पूछा कैसे?" मैंने कहा, "प्रतिमा-ग्रह में जब तक दीपक न जलाओ, कुछ दिखाई नहीं पड़ता। प्रतिमाओं के निकट रहने वाले पुजारी भ्रष्टाचार के लिये प्रसिद्ध हैं और

अस्पृश्यता का तो इतना प्राबल्य है कि कोई उपासक ब्रह्म-प्राप्ति तो क्या साधारण मूर्तिदर्शन भी नहीं कर सकता।'' दरिद्र से दरिद्र के पास ईश्वर है, परन्तु मूर्तियों के स्थान से तो ईश्वर अत्यन्त दूर है।

स्वामी दयानन्द ने मूर्तिपूजा में सोलह दोष गिनाये हैं। यह सब देशों और युगों की मूर्तिपूजा में पाये जाते हैं, सब देश के विद्वानों ने मूर्तिपूजा के विरुद्ध आवाज उठाई। जॉन विकलिफ ने जो ईसाइयों की मूर्तिपूजा का पहला विरोधी था प्राय: उसी प्रकार के दोष बताये हैं जो सत्यार्थप्रकाश में दिये हुये हैं। गुरुनानक आदि ने मूर्तिपूजा का विरोध किया। हिन्दुओं में एक पद प्रचलित है- ''**आत्मा में गंग बहे, क्यों न तू न्हाउ रे।**'' परन्तु इन सुधारकों ने स्वामी दयानन्द के समान रोग के मूल कारण पर प्रहार नहीं किया। लूथर ने मूर्ति खण्डन किया, परन्तु ईसा के अवतार का खण्डन नहीं किया। सन्त लोगों के शिष्य गुरुओं की मूर्तियों को पूजते रहे। जहाँ-जहाँ अवतारवाद और गुरुडम है, वहाँ-वहाँ मूर्तिपूजा रहेगी। स्वामी दयानन्द को मूर्तिपूजा का इतना कटु अनुभव था कि न उन्होंने मठ बनाया, न अपनी समाधि या स्मारक बनाने की अनुमति दी। आर्यसमाज के नेताओं को यह बात ध्यान में रखनी चाहिये।

बहुत से लोग भक्ति और श्रद्धा के आवेश में आकर ऋषि दयानन्द के सम्बन्ध में अनेक लोकोत्तर चमत्कारों को सम्बद्ध करते हैं और यह प्रवृत्ति बहुत-सी घटनाओं को गढ़ने में लगी हुई है। ऐसे लोगों का विचार है कि ऐसा करने से आर्यसमाज का प्रचार बढ़ेगा। संभव है कि उनकी आशायें पूरी हो जायें, परन्तु मूर्तिपूजा के प्रचार में इससे सहायता मिलेगी। जिस रहस्यवाद का इस युग में प्रचार आरम्भ हुआ है उसको देखते यह प्रतीत होता है कि २०६३ ई. तक यह नौबत आ जायगी कि आर्या ललनाएँ अपने बच्चों को टंकारा या अजमेर में मुण्डन के लिए ले जाया करेंगी और दयानन्द बाबा से मिन्नत माँगा करेंगी। बर्मा और स्याम के बौद्ध मन्दिरों में मैंने बड़े-बड़े बौद्धों को ऐसा करते देखा है। यदि ऐसा हुआ तो स्वामी दयानन्द की सम्पूर्ण तपस्या निरर्थक हो जायगी और स्वामी दयानन्द के विषय में अगले सुधारक वैसी ही आलोचना करेंगे जैसी स्वामी दयानन्द ने 'नारायणमत' आदि की है। आर्यसमाज के अगले नेताओं की चाल ढाल ही बता सकेगी कि नदी का प्रवाह किधर को जाता है।

स्वामी विवेकानन्द आदि आधुनिक विद्वानों तथा कवीन्द्र टैगोर आदि के कलात्मक ग्रन्थों के आधार पर कुछ मूर्तिपूजा के संपोषक लोगों ने कुछ नीवन युक्तियाँ भी गढ़ ली हैं जिनका मूर्तिपूजा से केवल दूरस्थ सम्बन्ध है और उनसे न तो ईश्वर प्राप्ति में सहायता मिलती है न मूर्तिपूजा के दोषों का ही निराकरण होता है। न इनसे उच्च कलाओं का ही उपयोग होता है। जगन्नाथपुरी के मन्दिर की अश्लील मूर्तियाँ कलात्मक होते हुये भी आचार-पतन का कारण होती हैं। वह कलाशास्त्र भी क्या जो आचार-शास्त्र या जीवन के अन्य उपयोगी विभागों से समन्वित न हो सके। सारांश यह है कि मूर्तिपूजा एक भयानक रोग है। इससे मानव जाति को लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार की यातनायें झेलनी पड़ी हैं। विद्वानों को चाहिये कि इस रोग के उन्मूलन का उपाय करते रहें।

संन्यास ग्रहण की आवश्यकता

जैसे शरीर में शिर की आवश्यकता है, वैसे ही आश्रमों में संन्यासाश्रम की आवश्यकता है क्योंकि इसके बिना विद्या, धर्म कभी नहीं बढ़ सकता और दूसरे आश्रमों को विद्या ग्रहण, गृहकृत्य और तपश्चर्यादि का सम्बन्ध होने से अवकाश बहुत कम मिलता है। पक्षपात छोड़कर वर्त्तना दूसरे आश्रमों को दुष्कर है। जैसा संन्यासी सर्वतोमुक्त होकर जगत् का उपकार करता है वैसा अन्य आश्रमी नहीं कर सकता क्योंकि संन्यासी को सत्य विद्या से पदार्थों के विज्ञान की उन्नति का जितना अवकाश मिलता है उतना अन्या आश्रमी को नहीं मिल सकता।

(स. प्र. स. ५)

यह लेख 'हिन्दी प्रदीप प्रयाग' से

पं. बालकृष्ण भट्ट

जिस दयानन्द के पुण्य प्रताप के कारण सदियों से सुप्त पड़ी मानव-चेतना अपनी जड़ता को उखाड़ फेंकने का स्वप्न देख रही थी। जिस ऋषिकुल मार्तण्ड की दिव्य दीप्ति ने दानव, दम्भियों के दृगों की दृष्टि हर ली थी। असमय ही उस देव के देहत्याग ने समस्त शिष्टता के सम्मुख भूचाल सा ला दिया। यह लेख पाठकों को उस भूचाल के कुछ अनुभव जरूर करायेगा, ऐसा हमारा विश्वास है। लेख की पंक्तियाँ पंक्तियाँ नहीं आँसुओं की कतारें मालूम होती हैं। गौरव की बात तो यह है कि यह लेख किसी आर्यसमाजी पत्र का नहीं बल्कि हिन्दी साहित्य के महान् पत्र 'हिन्दी प्रदीप', प्रयाग के नवम्बर १८८३ ई. के अंक का सम्पादकीय है। जिसके लेखक महान् साहित्यकार व विद्वान् पं. बालकृष्ण भट्ट हैं। -सम्पादक

यह भी हम इस हिन्दुस्तान का अभाग ही कहेंगे कि इसके ऐसे हितैषी परलोक यात्रा के लिए दत्तचित्त हो झटपट सिधार गये। सिवाय कतिपय प्रतारक धूर्त्त ब्राह्मण और कोरे पण्डितों के जो इनकी गुप्त नीति के मर्म समझने में सर्वथा असमर्थ हैं और कोई प्रसन्न न हुआ होगा। आर्यसमाज की बाँह टूट गई। सरस्वती का भण्डार लुट गया। यहाँ की बिगड़ी समाज के संशोधन का फाटक ढह गया। यह इन्हीं महात्मा का पुरुषार्थ है कि भारतवर्ष के धर्मतत्त्व का सर्वस्व वेद जिसे बड़े-बड़े विद्वान् ब्राह्मण भी केवल पाठमात्र पढ़ लेने के (अर्थज्ञान की ओर से निपट मूर्ख थे) और कुछ भी न जानते थे कि इसमें क्या चील-बिलार भरा है, सिवा 'मक्षिकास्थाने मक्षिका' के। सो भी केवल पाठमात्र में, अर्थ से क्या सरोकार? उसे जब जाति और चारों वर्ण के लोग समझने लगे और अब बहुतों के मन में लगी है कि इस वेदरूपी अगाध महोदधि में गहरी डुबकी मार इसकी थाह लेनी चाहिये कि इसमें क्या-क्या रत्न भरे हैं। अतिरिक्त वेद के उद्धार के, हिन्दू समाज की सैकड़ों बिगड़ी बातों के सुधारने में भी कोई कलबल इन्होंने न छोड़ रखा। "**कद्र मर्दुम बाद मर्दुम**"।[१] सरस्वती महाशय के न रहने पर अब इनकी कदर लोगों को होगी। कच्चे जौहरी, जिन्होंने हीरे को काँच समझ रखा था, चाहे जो कहें, पर हम तो अंग्रेजी सिद्धान्त (मोटो) पर दृढ़ रह दयानन्द की सर्वतोभाव से सराहना ही करेंगे।

हा! आज भारतोन्नतिकमलिनी का सूर्य अस्त हो गया। हा! वेद का खेद मिटानेवाला सद्वैद्य गुप्त हो गया। हा! दयानन्द सरस्वती आर्यों की सरस्वती जहाज की पतवारी बिना दूसरों को सौंपे तुम क्यों अन्तर्धान हो गये? हा! सच्ची दया के समुद्र! हा! सच्चे आनन्द के वारिद! अपनी विद्यामयी लहरी और हितोपदेशरूपी धारा से परितप्त भारतभूमि को आर्द्र कर कहाँ चले गये। हा! चार दिन के चतुरानन! इस असभ्यताप्रिय मण्डली में आपने अपनी विलक्षण चतुराई को क्यों इस प्रकार सरलभाव से फैलाया। क्या आप नहीं जानते थे कि काल कराल ने भारत को असाध्य आर्त बनाने के निमित्त ब्राह्मणों से तप: स्वाध्याय विद्याहीन विषय लम्पट और शिश्नोदरपरायण बना दिया। क्षत्रियों को ऐसा चौपट और हतमर्द कर डाला कि वे बेचारे किसी काम के ही न रहे। वह धनुर्वेद, वह अस्त्र-शस्त्रविद्या, वह शूरता-वीरता, वह अमर्ष जो अग्नि की उष्णता के समान उनका स्वाभाविक धर्म था सो अब कहीं देखने-सुनने को भी न रहा। जहाँ वशिष्ठादि महर्षियों की शिक्षा और नीतिविद्या का विचार होता था तहाँ ढाड़ी-कत्थकों की कथा से कालक्षेप होता है। सो ऐसे कौतुकी काल कराल को तुच्छ जान आपने मुनियों की वृत्ति निधड़क हो ग्रहण कर ली। यह न समझा कि वह निठुर निर्दयी काल आपकी प्रतिज्ञा और सत्य संकल्प को पूरा होने देगा या नहीं। हा! अब वे परोक्षफलदर्शक शृगालगण जो तुम्हारे सिंहनाद के भय से छिपते फिरते थे, आज ऊँचे टीले पर बैठ पूंछ फटकारेंगे और वे उच्छिष्टभोजी पेटार्थी कौवे जो अपने पेट के कारण तुम्हें बैरी जानते और काँव-काँव करते डोलते-फिरते थे सो सब कैसे आज मन मगन हो आनन्द बधाई बजायेंगे। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि इस अभागे भारत की भलाई और कल्याण के प्रयत्न में आपने अपने जीवनपर्यन्त एक क्षण का भी अन्तर नहीं डाला। क्या महन्त और मठाधीशों के समान आप भी सुखाश्रयी और देहाराम नहीं हो सकते थे? बैकुण्ठ पहुँचाने का बीमा और स्वर्गीय भोगविलास की हुण्डी का ब्यौरा फैलाते तो हजारों, लाखों चेले-चेलियों के तन-मन-धन को बात की बात में आप आत्मसात् और समर्पण क्या नहीं करा सकते थे? हा! निर्लेप नि:स्वार्थ शिक्षाप्रदायक! हा! बन्धुवात्सल्यकुलकुमुदसुधाकर! इस नीच और खोटे भाव भरे भारत देश में भटकते-भटकते आप कहाँ से आ गये? हा!

स्वामी दयानन्द! आपका यह पवित्र विग्रह योरूप-खण्ड के किसी देश में इस गुरुभाव के साथ प्रकट हुआ होता तो जिस उन्नतिशैल के शिखर तक पहुँचाने की सीढ़ी आप बना रहे थे उसको अवश्य पूरा कर देते और देश का देश आपका सहकारी और सहायक बन जाता। वे केवल आपके पवित्र नाम और सत्कीर्त्ति ही के संस्थापन का उद्योग न करते वरन् अपने कर्त्तव्यकर्म को उत्तरोत्तर ऐसा चमकाते कि एक दयानन्द रूपी मूल प्रकाण्ड से सहस्त्रों दयानन्दरूपी शाखा-प्रशाखा प्रकट हो जातीं और भारतश्रीविघातक काक शृगालों का क्षणिक प्रमोद जो आपके अन्तर्धान होने का संवाद सुनकर उत्पन्न हुआ है उसका अंकुर ही न जमता। आपका वह वेदार्थ क्षेत्र और अपूर्व सदाव्रत जो आपने ब्राह्मणों की सोहाग पिटारी से निकाल आर्यमात्र के लिये सुगम कर दिया है कभी न बन्द होने पाता। हमको क्योंकर आशा हो कि आपके उस भारी बोझ उठाने और असिधारा पथ पर चलने का फिर भी कोई साहस बाँधेगा। हम खूब जानते हैं कि आप उस निर्विवेकी विधाता के मुख पे कारिख पोतने गये हैं जिसने इस पवित्र भारत भूमि को सृजकर उसके योग्य सत्पुरुष न पैदा किया! हा भारतभारतीवनराजकेसरी! इस उजाड़ विपन को सनाथ किये बिना क्यों इस वेग से ऊपर को उठ धाये? क्या कोई पाखण्ड मत सुर में भी फैला है, जिसके निर्दलन के लिये आप झटपट वहाँ को सिधारे? सच-सच आपकी पवित्र आत्मा देवताओं के समुदाय-पति होने के योग्य थी। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि आप सरीखे देशहितैषी महात्माओं का पवित्र विग्रह इस असार संसार में चिरकाल तक नहीं रहता। इस बात की प्रत्यक्ष साक्षी के लिये बहुत से ग्रन्थ विद्यमान हैं। जिस प्रकार मन्दाग्नि और क्षुधारहित रोगियों के जठरानल धधकाने को सद्वैद्य लोग कटु तिक्त अम्ल रसों का व्यवहार करते हैं, ऐसे ही सद्धर्मविमुख और तत्वभ्रंशित जनों के मुरझाये चित्त की प्रफुल्लता के लिये मूर्त्तिपूजाखण्डन प्रभृति युक्ति को आप काम में लाये। आपके इस भाव को या तो प्राचीन महर्षिगण जानते होंगे जिनके हार्दिक अभिप्राय के मूल पर आपने इस कष्टसाध्य व्यवसाय को उठाया था या वे देशहितैषी उन्नत हृदय जानते होंगे जिनके मानसिक सरोरुह पर देशोन्नति किरणधारी भगवान् भास्कर का प्रकाश पहुँच गया है।

अब इस प्रसङ्ग के समाप्त करने के पूर्व यह अल्पज्ञ अपना अभीष्ट खोलकर कहता है कि जिस पुरुष के अनुताप से यत्किञ्चित यह निवेदन किया गया, उसकी मेरी जान-पहिचान केवल एक बार हुई थी जिसको १३ (तेरह) वर्ष से अधिक बीते कि यहाँ वासुकेश्वर पर थोड़ी देर तक संस्कृत में बातचीत हुई थी। तब से स्वामीजी कई बार यहाँ पधारे पर इसने अपने को उनकी शिक्षाजनित कर्त्तव्य के अयोग्य बन्धनासक्त समझ फिर उनसे न मिला, जब उनके शान्त होने का समाचार सुना तो उन बातों को कह सुनाया जो आर्यपदाधिकारियों को हृद्गत करनी चाहियें। अब सब सज्जनों से उचितानुचित की क्षमा मांग ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि भारत के जड़तान्धकारापहारी दयानन्द सा दूसरा सूर्य शीघ्र प्रकट कर दे। हमको उस सत्पुरुष के शुद्धभाव और सत्यसन्धता पर विश्वास होता है कि उक्त पुरुष के आरब्ध कार्यों में कभी विघ्न न होगा किन्तु जिन सज्जनों के भरोसे यह कार्य स्वामीजी छोड़ गये हैं वे लोग इस समर्पित कार्य को बड़ी उत्तमता और उज्ज्वलता के साथ चमकायेंगे। यह कुछ नई बात नहीं है, सदैव से अच्छे-अच्छे लोग अपने प्रियतमों को अपना कर्त्तव्य कार्य सौंपते ही आये हैं। देखिये! सन्ध्या समय भगवान् भास्कर जगदन्धकारनाशन कार्य अग्निदेव को सौंपकर आप अस्ताचल को सिधारते हैं और सवेरे अग्निदेव सूर्य के भरोसे विश्राम करते हैं। इन दोनों की परस्पर मैत्री और सहायता का कभी विश्लेष नहीं होने पाता।

यह कौन नहीं जानता कि स्वामीजी को सत्यशास्त्र और सद्विद्या का प्रचार और भारतवर्ष का मूर्खतान्धकारनिवारण तन-मन से अङ्गीकार था जिसको वे अपने अङ्ग-अङ्ग और रोम-रोम से समय प्रतिसमय प्रकाशित कर चुके हैं। इस अवस्था में उन विद्वानों को जो सङ्केतमात्र से प्राणिमात्र के भाव को बूझ सकते हैं उनको बैकुण्ठवासी स्वामीजी के मुखकमलनिःसृत आशयों के मूल पर उनके अभिलषित भाव का समुत्थान कठिन नहीं है। किन्तु जहाँ ऐसे अविरल विद्वान् विद्यमान् हैं कि यदि इस बड़े कार्य की पूर्त्ति के लिये वे नियुक्त किये जायें तो निस्सन्देह अपनी विद्यामयी धारा से सींच उस वृक्ष में फल लगा सकते हैं जिसको उक्त महात्मा प्रफुल्लित और हराभरा छोड़ गया है। कुछ आश्चर्य नहीं है कि जिस कार्यसमर्पित मण्डली के सभाशिरोमणि यावदार्यकुलकमलप्रभाकर श्री महाराणा उदयपुराधीश हैं, वह कार्य अवश्य निर्विघ्न और उत्तमता के साथ उन्नतिशैल की चोटी तक पहुँचेगा और सर्वदा सुरक्षित रहेगा।

हिन्दी 'प्रदीप' (नवम्बर १८८३ ई.) प्रयाग से साभार।

टिप्पणी- १. मनुष्य की कद्र मनुष्य के न रहने पर होती है।

आडम्बरों के उन्मूलन का प्रारम्भ कहाँ से?

रामनिवास 'गुणग्राहक'

आर्यसमाज एक ऐसा बुद्धिवादी और विवेकोन्मुख संगठन है जो प्राणीमात्र के कल्याण में ही आत्मकल्याण की अवधारणा पर बल देता है। आर्यसमाज की समस्त मान्यताएँ, मर्यादाएँ, नीति-नियम और व्यवस्थाएँ बौद्धिक विमर्श पर आधारित हैं। आर्यसमाज की कार्यशैली सर्वकल्याण को लेकर चलने वाली है, पुनरपि आर्यसमाजियों की कुछ व्यावहारिक दुर्बलताओं, बाहरी लोगों द्वारा फैलाई गई भ्रान्तियों के कारण आर्यसमाज अपनी सैद्धान्तिक स्वीकार्यता को व्यापकता नहीं दे सका। आन्तरिक दुर्बलताएँ बनी रहें तो जीवन भार बन जाता है, ऐसे में सामाजिक क्षेत्र में कीर्तिमान बनाने की बात कौन करे? इतिहास साक्षी है कि आज जैसे यातायात और संचार के साधन न होते हुए भी, आर्थिक संसाधनों के अभाव में भी आर्यसमाज की पहली-दूसरी पीढ़ी के समर्पित आर्यों ने अपने आत्मबल और संघर्षशीलता के चलते विश्वस्तर तक अपना डंका बजाया। वर्तमान पीढ़ी के उपदेश उन्हीं के गुण गौरव सुनाकर उदर-भरण मात्र कर रहे हैं। हमें अपने अन्दर उनके पद चिह्नों पर चलने की सामर्थ्य जगानी होगी। हमें हृदय पटल पर चमकदार अक्षरों में अंकित कर लेना होगा कि तप-त्याग और संयम-साधना के बिना न तो कोई आत्मकल्याण के पथ पर एक कदम बढ़ा सकता है और न लोक कल्याण के पथ पर। सुविधा और समृद्धि के लिए लालायित लोग कभी किसी काम के नहीं होते। स्वार्थ, सम्मान व समृद्धि की कामना को साथ लेकर समाज सेवा की बात करना क्या आडम्बर की कोटि में नहीं आता? अपने आडम्बरों को छोड़े बिना हम दूसरों के आडम्बर मिटाने निकलें तो उपहास ही होगा। हमें सोचना होगा कि जब मैं अपने हृदय से, अपने जीवन से आडम्बर नहीं मिटा सका, तो भला दूसरों के हृदय व जीवन से कैसे मिटा सकूँगा? मैं स्वयं निरक्षर रहकर किसी को वर्णमाला (अक्षर ज्ञान) नहीं सिखा सकता। अगर हम अपने जीवन से आडम्बर मिटाने का संकल्प लेना चाहते हैं तो ध्यान रखें कि आडम्बर को अगर वृक्ष मान लें तो अन्धविश्वास के बीज के बिना आडम्बर का अंकुर नहीं निकलता। अन्धविश्वास ही सब प्रकार के आडम्बरों का जन्मदाता है, उसे निर्मूल किये बिना आडम्बर का उन्मूलन सम्भव ही नहीं।

आइये! आडम्बर उन्मूलन के लिए अन्धविश्वास निर्मूलन पर काम करने का मन बनाएँ। पहले यह समझें कि अन्धविश्वास है क्या? सरल शब्दों में कहें तो जिस बात को हमारी बुद्धि भलीभाँति समझ न सकी हो, मन-मस्तिष्क में प्रश्नोत्तर या शंका-समाधान किये बिना ही किसी बात को सत्य मानकर बिठा लेना ही अन्धविश्वास है। और सरलता से समझिये- अपनी बुद्धि व अपने विवेक का प्रयोग किये बिना ही किसी गुरु और ग्रन्थ की बातों को सत्य मान लेना अन्धविश्वास है। जब मैंने किसी बात को सुनने, समझने और स्वीकार करने में अपनी बुद्धि लगाई ही नहीं तो ऐसी बात को मैं किसी दूसरे को सुना तो सकता हूँ, समझा नहीं सकता। इसी स्थिति और मनोदशा को अन्धविश्वास कहते हैं। दु:ख की बात तो यह है कि अन्धविश्वास से ग्रस्त व्यक्ति जीवन के किसी भी क्षेत्र में तर्क और युक्तिपूर्वक समझने-समझाने की क्षमता गँवा बैठता है। हाँ, अन्धविश्वास से ग्रस्त व्यक्ति भी यदा कदा तर्क और बुद्धि की बात करता हुआ दिखता है, मगर उसके तर्क सत्य को समझने-समझाने के लिए न होकर जो उसने मान रखा है उसी को सत्य सिद्ध करने के लिए होते हैं। पाठकवृन्द! बुरा न मानो तो कड़वा सच यह भी है कि अन्धविश्वासी व्यक्ति जीवन के किसी क्षेत्र में सत्य का सम्मान नहीं कर पाता, सत्य से भटके हुए विचारों वाला व्यक्ति व्यवहार के धरातल पर निष्पक्ष और न्यायप्रिय भी नहीं रह पाता। हम थोड़े से सत्यप्रिय, निष्पक्ष होकर अपने व दूसरों के विचारों और व्यवहारों का अवलोकन करके देखें तो मनोविज्ञान के इस सिद्धान्त को भलीभाँति समझ सकते हैं। अन्धविश्वास की जड़ खोदने के लिए इसके मनोविज्ञान की गहराई में उतरने लगे तो विषय भटक जाएगा। अन्धविश्वास और आडम्बरों का परस्पर सम्बन्ध बीज और वृक्ष या विचार और व्यवहार के रूप में समझा जा सकता है। अन्धविश्वास से प्रेरित या प्रभावित होकर हम लोक व्यवहार में जो कुछ भी करते हैं, वह आडम्बर कहलाता है। आडम्बरों के विविध रूपों को देखना-परखना भी बड़ा रोचक होता है। आडम्बर धार्मिक क्षेत्र में ही नहीं होते, हमारे सामान्य जीवन में भी आडम्बरों का खूब बोलबाला रहता है। सत्य और तथ्य से हटकर हम जहाँ भी, जो भी कुछ करते हैं, वह आडम्बर की कोटि में आ ही जाता है। इतना सब होते हुए भी धर्म और ईश्वर के सम्बन्ध में

प्रचलित आडम्बर सबसे घातक व पतनगामी होते हैं।

आडम्बरों और उनके जनक अन्धविश्वासों से परिचित होने के बाद उनके उन्मूलन की बात भी कर लें। वस्तुत: किसी समस्या को भलीभाँति समझे बिना उसका सटीक समाधान नहीं किया जा सकता। समस्या की जड़ समझ में आ जाए तो समाधान भी कहीं आस-पास लुका-छिपा मिल जाता है। हम बता चुके हैं कि यूँ तो आडम्बर जीवन के हर क्षेत्र में कौतूहल दिखा रहे होते हैं, मगर धर्म और ईश्वर के सम्बन्ध में आडम्बर और अन्धविश्वास हमारे जीवन को सर्वाधिक हानि पहुँचाते हैं। आइये! सर्वप्रथम उन्हीं की जड़ खोदने की दिशा में बढ़ें। महर्षि कपिलाचार्य ने सांख्यशास्त्र में दो सूत्र दिये हैं, जो आडम्बरों और अन्धविश्वासों की उत्पत्ति और विनाश का चित्र प्रस्तुत करते हैं। सत्यार्थप्रकाश के ११ वें समुल्लास में महर्षि दयानन्द उन दोनों सूत्रों- '**उपदेश्योपदेष्टृत्वात् तत्सिद्धिः**' '**इतरथान्ध परम्परा**' को देकर लिखते हैं- ''जब उत्तम-उत्तम उपदेशक होते हैं, तब अच्छे प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सिद्ध होते हैं और जब उत्तम उपदेशक और श्रोता नहीं रहते, तब अन्ध परम्परा चलती है। फिर भी जब सत्पुरुष उत्पन्न होकर सत्योपदेश करते हैं, तभी अन्ध परम्परा नष्ट होकर प्रकाश की परम्परा चलती है।'' ऋषि वचनों से स्पष्ट है कि सत्योपदशें की शृंखला जिस देश, समाज व परिवार में निरन्तर चलती रहती है, वहाँ जीवन के परम लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि अच्छी प्रकार होती है। जहाँ सत्योपदेशों की शृंखला टूट जाती है, एक पीढ़ी अपने अनुभव-जन्य ज्ञान को दूसरी पीढ़ी के लिए नहीं दे पाती या नई पीढ़ी नहीं ले पाती, तो वहाँ अन्ध परम्पराएँ सिर उठाने लगती हैं। हाँ, पुन: कोई सत्पुरुष सत्योपदेश शृंखला का बीजारोपण कर दे तो अन्धपरम्पराएँ नष्ट होकर ज्ञान के प्रकाश की परम्परा चल निकलती है। इसीलिए महर्षि देव दयानन्द सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में लिखते हैं- ''सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।'' अन्धविश्वास, अन्धपरम्पराएँ और आडम्बर हमारे जीवन को पतन या अवनति की ओर धकेलकर दुर्गति में डालने वाले हैं, दूसरी ओर सत्योपदेश हमारे जीवन को प्रकाश की ओर ले जाकर उन्नतिशील बनाते हैं तथा धर्मार्थकाममोक्ष की सिद्धि प्रदान करते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं है कि आडम्बर और अन्धविश्वास-अन्धपरम्पराओं के समूल नाश के लिए हमारे पास वेद स्वाध्याय, वेदोपदेश ही एकमात्र उपाय है।

जैसा कि हम प्रारम्भ में ही प्रकट कर चुके हैं कि इस लेख में हम केवल आडम्बर-उन्मूलन की प्रारम्भिक प्रक्रिया पर विचार कर रहे हैं। आडम्बर-उन्मूलन का अभियान चलाने वालों का स्वयं का जीवन आडम्बर मुक्त होगा तभी तो वह दूसरों को आडम्बर मुक्त कर सकेगा। अपने जीवन को आडम्बर शून्य बनाने के लिए सत्यविद्या के मूल स्रोत वेद से जुड़ें, वेद स्वाध्याय का व्रत लें। सत्योपदेश वही कर सकता है, जो सब सत्य विद्याओं के पुस्तक वेद का पढना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना अपना परम धर्म मान लेगा। ईश्वर और धर्म सम्बन्धी अन्धविश्वास और आडम्बर सर्वाधिक पतनकारी होते हैं, इसलिए ईश्वर और धर्म के सम्बन्ध में निर्भ्रान्त ज्ञान होना अत्यावश्यक है। तैत्तरीय ब्राह्मण के ऋषि लिखते हैं- ''**यो मनुष्यो वेदार्थान् न वेत्ति, स नैव बृहन्तं परमेश्वरं धर्मं विद्यासमूहं वा वेत्तुमर्हति**'' (३.१२.९.७)। अर्थात् जो मनुष्य वेद के सत्य अर्थ को नहीं जानता, वह कभी महान् परमेश्वर को, धर्म को, और विद्या के रहस्य को नहीं जान सकता। धर्म और ईश्वर के सच्चे स्वरूप को न जानने वाला धर्म और ईश्वर सम्बन्धी अन्धविश्वासों-आडम्बरों से कैसे बच सकता है? और वह स्वयं नहीं बच सकता, तो भला दूसरों को क्या बचायेगा? हम सब जानते हैं कि संसार का छोटे से छोटा काम पहले सीखना-समझना पड़ता है। बिना सीखे-समझे हम कुछ भी करने लगें तो निश्चित रूप से असफल होकर उपहास के पात्र बनेंगे। जिन्हें आर्यसमाज की वेदी से भजन, उपदेश या प्रवचन करके केवल धन कमाना, परिवार पालना है, वे केवल गाना-बोलना सीखकर काम चला सकते हैं, लेकिन ऋषि दयानन्द के सच्चे अनुयाई बनकर वेदविद्या का प्रचार-प्रसार करके पुण्य धन, धर्म धन कमाना है, उन्हें पहले अपना जीवन-सुधार करना होगा। अपना जीवन सुधारे बिना कोई कभी किसी का जीवन नहीं सुधार सकता। वह सुधार की प्रक्रिया जानता ही नहीं, उसे पता ही नहीं सुधार होता कैसे है? विचार स्वयं के सुधार से जुड़े हुए हैं, जिनके मन-मस्तिष्क में स्वयं के सुधार की लालसा है, उनके लिए ये अनमोल रत्न हैं। जो केवल पढ़ने के लिए ही पढ़ते हैं, उनकी चेतना को चुनौती देने वाले हैं। आडम्बर और अन्धविश्वास-उन्मूलन का पुण्य कार्य केवल आर्यसमाज ही करता है, शेष सब दूसरों के आडम्बर हटाकर अपने थोपना चाहते हैं। उन सबके सब आडम्बरों को मिटाने के लिए हमें स्वयं को कितना सबल और समर्थ बनाना होगा, इसका विचार कर स्वयं को सशक्त बनाएँ और देश दुनिया से आडम्बर दूर भगाएँ।

शङ्का समाधान - ४९

डॉ. वेदपाल

शङ्का- ओ३म्- अ उ म् कौन-कौन सी धातु से तीनों शब्द बने हैं?

डॉ. प्रतिभा सिंघल, अवन्तिका, गाजियाबाद।

समाधान- आचार्य यास्क ने शब्द रचना के सम्बन्ध में दो मत प्रदर्शित किए हैं-

सर्वाणि नामान्याख्यातजानीति शाकटायनो नैरुक्तसमयश्च, न सर्वाणीति गार्ग्यो वैयाकरणानां चैके

- निरुक्त १.१२

१. सब शब्द व्युत्पन्न हैं अर्थात् इनके मूल में कोई न कोई प्रकृति-प्रत्यय है। प्रकृति का अर्थ है- धातु। इस मत के अनुसार शब्द के मूल में कोई धातु तथा प्रत्यय रहता है। उदाहरणार्थ- 'अक्षि' शब्द को लें- अश+क्सि ('अंश भोजने'-क्र्यादि. अथवा 'अशूङ् व्याप्तौ'-स्वादि. धातु से क्सि प्रत्यय-अशेर्नित्-उणादि ३.१५६) 'अश्नुते व्याप्नोति विषयान् येन तत् अक्षि' **महर्षि दयानन्द उणादि व्याख्या।**

२. सभी शब्द व्युत्पन्न न होकर कुछ अव्युत्पन्न भी हैं। इस प्रकार के शब्द निपातन अथवा यथोपदिष्ट हैं। अर्थात् इस प्रकार के शब्द किसी विशेष अर्थ का बोध तो कराते हैं, किन्तु इनके मूल धातु-प्रत्यय स्पष्ट नहीं होते हैं। जैसे-कपित्थ-कपिस्तिष्ठत्तत्र तत्फलप्रियत्वात् स्था-क पृषो.। कपित्थ सदृश शब्दों को निपातन से सिद्ध माना जाता है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती 'ओ३म्' अक्षर/शब्द को व्युत्पन्न मानते हैं। वैसे भी महर्षि वैदिक पदों की व्याख्या व्युत्पन्न-यौगिक मानकर ही करते हैं। ओ३म् के सन्दर्भ में इस व्युत्पन्न पक्ष की दृष्टि से भी दो मत हैं-

१. तीन पृथक्-पृथक् अर्थ वाले अक्षरों से निष्पन्न।

२. प्रकृति-प्रत्यय द्वारा निष्पन्न।

१. ओ३म् यह ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है, क्योंकि इसमें जो अ उ म् ये तीन अक्षर मिलकर एक ओ३म् समुदाय हुआ है। इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आते हैं। जैसे-अकार से विराट्, अग्नि और विश्वादि, उकार से हिरण्यगर्भ, वायु और तैजसादि, मकार से ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञादि नामों का वाचक और ग्राहक है। द्रष्टव्य- स.प्र. समु.१

यहाँ अ उ म्- ये तीन अक्षर हैं। इनका समुदित रूप- 'ओम्' है। इस विचार का मूल ऐतरेय ब्राह्मण अ. २५ खण्ड ७ में है-

"प्रजापतिरकामयत प्रजायेय भूयान्स्यामिति स तपोऽतप्यत...त्रीणि शुक्राण्यजायन्त भूरित्येव ऋग्वेदादजायत भुव इति यजुर्वेदात् स्वरिति सामवेदात् इति। तानि शुक्राण्यभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयो वर्णा अजायन्ताकार उकारो मकार इति तानेकदा समभरत्तदेतद् ओम् इति।"

अर्थात् प्रजापति ने तपपूर्वक पृथिवी-अन्तरिक्ष-द्यु तदनु इनसे तीन ज्योति अग्नि-वायु-आदित्य का सृजन किया। इन तीन ज्योतियों से वेदत्रयी ऋग्-यजु-साम तथा इस वेदत्रयी से क्रमशः भूः-भुवः-स्वः को उत्पन्न किया। इन व्याहृतियों के सार रूप में अ-उ-म् उत्पन्न हुए। इस वर्णत्रय को एकत्र करने पर 'ओम्' हुआ।

इस प्रकार प्रजापति के तपपूर्वक सृष्ट ब्रह्माण्ड का सार यह 'अ उ म्' तीन अक्षर हैं। इनका समुदित रूप ओम् है।

अथर्ववेदीय गोपथ ब्राह्मण पूर्वभाग प्रपाठक-१, कण्डिका १६-२२ में भी ओम् की अ उ म् इन तीन मात्राओं का वर्णन है।

माण्डूक्योपनिषद् ९-११ में जागरितस्थान वैश्वानर को अकार (अ), स्वप्नस्थान तैजस् को उकार (उ) तथा सुषुप्त स्थान प्राज्ञ को मकार (म्) कहा है। यह सम्पूर्ण जगत् ओम् का उपव्याख्यान-विस्तार है। ओम् ब्रह्म-ईश्वर का वाचक है।

वाचस्पत्यम् में ओम् को अव्यय तथा 'अश्च उश्च म्च, तेषां समाहारः' अ उ म् का समाहार कहा है। यह ब्राह्मण के 'तदेतद् समभरत्तदोमिति' के समान ही है।

पौराणिक जगत् में 'अ' से ब्रह्म, 'उ' से विष्णु तथा 'म्' से रुद्र को भी गृहीत करने का वर्णन है। वैष्णव आचार्यों के मतानुसार-'अ' का अर्थ है 'विष्णु', 'म्' का

अर्थ है 'जीव' तथा दोनों के मध्यवर्ती 'उ' उन दोनों ईश्वर जीव के सम्बन्ध का द्योतक है।

वृद्धहारीत स्मृति (यह स्मृति वैष्णव सम्प्रदाय से सम्बद्ध है। अतः इसमें अवैष्णवों के प्रति कटूक्तियाँ भी हैं-द्र. अ. २, श्लोक २९-३२ आदि। यहाँ केवल ओम् से सम्बन्धित सन्दर्भ उनके मत प्रतिपादन की दृष्टि से उद्धृत हैं।) में ओम् विषयक स्थल द्रष्टव्य हैं-

अकारञ्चाप्युकारञ्च मकारञ्चेति तत्त्वतः।
तान्येकधा समभवत्तदोमित्येतदुच्यते।।
तस्मादोमिति प्रणवो विज्ञेयः साक्षरात्मकः।
वेदत्रयात्मकं ज्ञेयं भूर्भुवः स्वरितीति वै।।
अकारस्तु भवेद्विष्णुस्तदृग्वेद उदाहृतः।
उकारस्तु भवेल्लक्ष्मीर्यजुर्वेदात्मको महान्।।
मकारस्तु भवेज्जीवस्तयोर्दास उदाहृतः।

अ. ३, ५६-५९

स्मृतिकार ने प्रथम दो श्लोक ५६-५७ में ब्राह्मण ग्रन्थानुसार 'ओम्' का प्रतिपादन किया है, किन्तु अगले श्लोक में वैष्णव सम्प्रदायानुसार विष्णु-लक्ष्मी का वर्णन कर जीव को उनका दास प्रतिपादित किया है। श्लोक ८७-८८ में 'भूः' को 'विष्णु' 'भुवः' को 'लक्ष्मी' तथा 'स्वः' को 'जीव' कहा है।

शांकर वेदान्त के अनुसार- 'सोऽहमित्योम्'। तैत्तिरीय सन्ध्या भाष्य में कृष्ण पण्डित-

'विशेषस्तु भगवत्पादीयमतानुसारेण प्रपञ्च्यते।'

प्रपञ्चसारे मन्त्रसृष्टिप्रकरणे-

योऽयं परमहंसाख्यो मन्त्रः सोऽहमितीरितः।
सहोर्लोपेऽस्यपूर्वत्वे सन्धावोमिति जायते।।

(पं. विद्यासागर शास्त्री- अष्टोत्तर शतनाममालिका, पृ. २३ से)

अर्थात्- सोऽहम्= सो अहम्- सकार हकार का लोप होने पर= ओ अम्-अम् के अ को पूर्वरूप होकर= ओम्।

२. ओम् पद को व्युत्पन्न=प्रकृति-प्रत्यय से निष्पन्न मानने का आधार इसके निर्वचन हैं। महर्षि दयानन्द ने 'अवतीत्योम्' निर्वचन किया है तथा अर्थ रक्षा परक 'रक्षा करने से ओम्' किया है। इस विषय में गोपथ ब्राह्मण पूर्वभाग प्रपाठक-१, कण्डिका २४ द्रष्टव्य हैं-

'ओङ्कारं पृच्छामः को धातुः किं प्रातिपदिकं कि नामाख्यातं किं लिङ्गं किं वचनं का विभक्तिः कः प्रत्ययः कः स्वर उपसर्गो निपातः किं वै व्याकरणं को विकारः को विकारी कतिमात्रः कतिवर्णः कत्यक्षरः कतिपदः कः संयोगः किं स्थानानुप्रदानकरणं शिक्षकाः किमुच्चारयन्ति किं छन्दः को वर्ण इति पूर्वे प्रश्नाः।'

अर्थात्- ओङ्कार के विषय में पूछते हैं कि कौन सी धातु है? क्या प्रातिपादक है? क्या नाम और आख्यात-क्रिया पद हैं?...।

उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर कण्डिका २६ में हैं। तद्यथा-

'को धातुरित्यापृर्धातुरवतिमप्येके रूपसामान्यादर्थ-सामान्यान्नेदीयस्तस्मादापेरोङ्कारः सर्वमाप्नोतीत्यर्थः...।'

अर्थात् कौनसी धातु है? इसका उत्तर है-आपृ धातु है, कोई कोई अवति भी मानते हैं।

पाणिनीय धातुपाठ में व्याप्त्यर्थ में **'आप्लृ व्याप्तौ'** (स्वादि.) धातु (धातुपाठ में 'आपृ' नहीं है।) है। भ्वादि. अव-धातु के रक्षण आदि सोलह अर्थ हैं। रक्षार्थक अव धातु से **'अवतेष्टिलोपश्च'**- उणादि १.१४२ सूत्र से 'मन्' प्रत्यय के 'टि' का लोप तथा धातु के उपधा को 'ऊठ्' एवं गुण होकर 'ओम्' पद व्युत्पन्न हुआ है।

गोपथ में ओम् को एकाक्षर भी कहा है- वहाँ इसकी मात्राओं का भी उल्लेख है। एकाक्षर कहने का अभिप्राय मात्र एक वर्ण अ, उ आदि न होकर 'अ उ म्' के समुदित रूप अथवा अव+मन् से निष्पन्न पद 'ओम्' से है।

ओम् पद वाचक है तथा इसका वाच्य ईश्वर है। योगदर्शन में कहा है- **तस्य वाचकः प्रणवः।**

सब वर्णों के स्त्रीपुरुष को वेद पढ़ने का अधिकार है

सब स्त्री-पुरुष अर्थात् मनुष्य मात्र को वेद पढ़ने का अधिकार है। क्या परमेश्वर शूद्रों का भला करना नहीं चाहता? क्या ईश्वर पक्षपाती है? कि वेदों के पढ़ने-सुनने के शूद्रों के लिए निषेध और द्विजों के लिए विधि करे? जो परमेश्वर का अभिप्राय शूद्रादि के पढ़ाने-सुनाने का न होता तो इनके शरीर में वाक् और श्रोत्र इन्द्रिय क्यों रचता?

प्रभु ही सच्चा मित्र

कन्हैयालाल आर्य

महात्मा भर्तृहरि जी ने मित्र के लक्षण देते हुए एक श्लोक लिखा है-

पापान्निवारयति योजयते हिताय,
गुह्यं निगूहति गुणान् प्रकटीकरोति।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले,
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः।।

महात्मा भृर्तहरि जी ने इस श्लोक में मित्र के छः लक्षण बताये हैं।

(१) पापान् निवारयति= पाप न करने की अर्थात् दुष्कर्म छोड़ने की प्रेरणा दे।

(२) योजयते हिताय= परोपकार के कामों में अपने मित्र को लगायें।

(३) गुह्यं निगूहति= मित्र की छिपाने योग्य बात को छिपावे।

(४) गुणान् प्रकटीकरोति= मित्रों के गुणों की समाज में चर्चा करे।

(५) आपद्गतं च न जहाति= विपत्ति में घिरे मित्र की कभी उपेक्षा न करे।

(६) ददाति काले= मित्र को यदि किसी समय किसी प्रकार की, चाहे वह आर्थिक हो या नैतिक सहयोग की आवश्यकता हो, अवश्य करे।

महात्मा भर्तृहरि जी ने कहा है कि सन्तों ने सन्मित्रों के ये उपरोक्त लक्षण कहे हैं। आइये इनकी संक्षिप्त व्याख्या करते हैं।

(१) मित्र का पहला कर्त्तव्य है कि निरन्तर सम्पर्क के कारण अपने मित्र के जीवन की जो बुराई पता लगे, उसे छोड़ने के लिए उसे प्रेमपूर्वक प्रेरणा करे। किन्तु आज स्थिति यह है कि जिस व्यसन में हम स्वयं हैं, उसी व्यसन में अपने मित्र को भी घसीटना चाहते हैं। हम स्वयं शराब पीते हैं, सिगरेट का सेवन करते हैं तो अपने मित्रों को भी आग्रहपूर्वक इस दुष्कर्म की ओर घसीटने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु अच्छे मित्र का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने मित्र को दुष्कर्म छोड़ने की प्रेरणा दे।

(२) अच्छे मित्र का केवल इतना कर्त्तव्य नहीं है कि वह अपने मित्र को दुष्कर्म छोड़ने की प्रेरणा दे बल्कि परोपकार के कार्यों में भी लगावे। बुराई के संस्कारों से पीछा तो तभी छूटेगा जब बुराई के स्थान की पूर्ति अच्छाई से होगी, अतः मित्र को बुराई से हटाकर भलाई में लगावें।

(३) मित्र में कोई बुराई हो तो उसे छिपाने का प्रयास करें, उस बुराई की चर्चा समाज में बिल्कुल न करें, परन्तु ऐसा तब होगा जब आपको पता चले कि आपका मित्र अपनी बुराइयों को छोड़ने के लिए भरसक प्रयत्नशील है। ऐसी अवस्था में मित्र की बुराइयों को अनदेखा कर देना चाहिये, परन्तु आजकल बहुत चतुरता से हम अपने मित्र की बुराइयों की समाज में चर्चा करते हुए कहते हैं, ''भाई साहब! वैसे तो हमारे मित्र बहुत अच्छे हैं, परन्तु क्या बतायें हम कई बार उन्हें जुआ न खेलने की प्रेरणा दे चुके हैं, परन्तु वे समझते ही नहीं'' इस प्रकार की भाषा का प्रयोग करके अपने मित्र की बुराइयों का ढिंढोरा पीटते रहते हैं। ऐसे मित्र शत्रुओं से भी अधिक भयंकर होते हैं।

(४) यदि आपके मित्र में कोई गुण है तो उन गुणों की समाज में अत्यधिक चर्चा करनी चाहिये। उनके बारे में यह कहना चाहिये ''भाई साहब! पुरुषार्थ का दूसरा नाम मेरा अमुक मित्र है। यदि किसी व्यक्ति ने सेवा भाव और सत्संग की प्रेरणा लेनी हो तो मेरे अमुक मित्र से सीखे।'' इस प्रकार के विचार प्रकट करके न केवल हम अपने मित्र को सम्मानित करते हैं बल्कि समाज में ऐसे गुणों की विशेषतायें प्रकट करके समाज को उत्तम दिशा की ओर प्रेरित करते हैं।

(५) यदि मित्र किसी कारण से किसी प्रकार की चाहे वह आर्थिक हो या नैतिक विपत्ति में फँस गया है और आपको प्रभु ने पूर्ण सामर्थ्य दिया है तो अपने सामर्थ्य अनुसार मित्र को अवश्य सहयोग करें। यदि आप संकट में किसी मित्र की सहायता करते हैं तो आपकी मित्रता की जड़ें और अधिक गहरी हो जाती हैं।

(६) बुरा समय आने पर मित्र के घाव को सहलाना अच्छी मित्रता की पहचान में आता है क्योंकि बुरे दिन सदा नहीं रहते और बुरे दिनों में सहायता करने वाला सदा स्मरण रहता है।

आइये! अब हम इन सब लक्षणों को परमपिता परमात्मा पर जब चरितार्थ करते हैं तो हमारा वह सदैव-सदैव का सच्चा मित्र ही दिखता है। सामान्यजन तो कभी साथ देते हैं और कई बार स्वार्थ के वशीभूत हो कर धोखा भी दे देते हैं, परन्तु परमात्मा ही ऐसा है जो न तो कभी धोखा देता है और न ही कभी साथ छोड़ता है। सच्चे मित्र के पूर्ण लक्षण परमात्मा में ही दिखाई देते हैं।

(१) मित्र का पहला लक्षण है पाप से बचाये। सांसारिक मित्र तो पाप करने पर ही उससे बचने का परामर्श देगा, किन्तु प्रभु तो ऐसा अन्तर्यामी मित्र है कि मन में ज्यों ही बुरे संस्कार आते हैं उसी समय, भय, शंका, लज्जा के भाव उत्पन्न करके बुराई से बचने की प्रेरणा करता है साथ ही अच्छा काम करने का विचार आते ही उल्लास और हर्ष उत्पन्न कर देता है।

(२) प्रभु सदैव अच्छे कर्मों को करने की ही प्रेरणा देता है। जब वह स्वयं सर्वगुण सम्पन्न है तो उसके निकट जाने वाले व्यक्ति भी गुणों से भरपूर होंगे ही। कोई व्यक्ति जैसे व्यक्ति से मिलता है, उसके प्रभाव से अछूता नहीं रह सकता। यदि आप अग्नि के निकट जाओगे तो आपको ऊष्मा मिलेगी और जल के निकट जाओगे तो शीतलता प्राप्त होगी क्योंकि ये उन तत्त्वों के स्वाभाविक गुण हैं। इसी प्रकार परमात्मा सदैव निर्दोष है तो वह अपने निकट आने वाले या उसको मित्र बनाने वाले को अपने समान परोपकार करने की प्रेरणा भी देता है।

(३) परमपिता परमात्मा हमारे कई दुर्भावों को समाज के सामने प्रकट नहीं होने देता अर्थात् वह छिपाने योग्य दुर्गुणों को समाज के सामने प्रकट नहीं होने देता अर्थात् वह छिपाने योग्य दुर्गुणों को छिपाता है यह उसकी असीम कृपा है। हमारा कोई ऐसा दुर्विचार या दुर्व्यसन ऐसा नहीं है जिसे भगवान् न जानता हो, क्योंकि भगवान् तो सर्वान्तर्यामी है फिर भी वह हमारे मन में उठे विचारों को गुप्त रखता है। यदि हम एक-दूसरे के गुप्त भावों को जान पायें तो बहुत बड़ा बखेड़ा हो सकता है।

(४) परमपिता परमात्मा जहाँ हमारे दुर्भावों को छिपाता है वहाँ हमारे अच्छे गुणों को प्रकट भी कर देता है, हमें अच्छा पद दे देता है, यश दे देता है, धन दे देता है, अच्छी संस्कारी सन्तान दे देता है, यह सब हमारे गुणों को समाज में सम्माननीय स्थान प्राप्त कराता है। संसार में एक भी उदाहरण ऐसा नहीं मिलेगा कि जिसके सदाचरण की सुगन्ध समाज में न फैली हो। प्रभु अपने ढंग से किसी न किसी रूप में हमारे यश की वृद्धि करके हमें समाज का एक उपयोगी तथा सम्मानित व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करता है, यह सब उस परमपिता परमात्मा की कृपा के अत्तिरिक्त और कुछ नहीं है।

(५) जब भी हम विपत्ति में होते हैं जब हमारे सारे सहारे छूट जाते हैं उस समय में भी परमात्मा ही हमारा सहारा बनता है। कई बार हम पर विपत्ति आती है तो वह भी उस समय हमारे सुधार के लिए एक चेतावनी होती है। उस विपत्ति का अर्थ हमारा कुछ बिगाड़ना नहीं बल्कि हमारे जीवन में सुधार करना होता है इसे महात्मा हँसराज जी के जीवन के एक दृष्टान्त से समझ सकते हैं।

महात्मा हंसराज जी की पत्नी की मृत्यु हो गई थी, बड़ा पुत्र जेल में था, छोटे लड़के को निमोनिया हो गया था, गाय मर गई थी, घर में चोरी हो गई थी, बड़े भाई भी मुलखराज जी की ओर से जो ४० रुपये प्रतिमास आर्थिक सहायता मिलती थी, वह बैंक के फेल हो जाने पर बन्द हो गये थे, घर में एक दाना नहीं था। छोटी पुत्री ने भावुक होकर प्रश्न किया, ''पिताजी! क्या अब भी ईश्वर है?'' महात्मा हंसराज ने प्यार से मुस्कराते हुए कहा, ''पुत्री! ईश्वर हर समय हमारे पास हैं-जो कभी-कभी हमारे धैर्य की परीक्षा लेते हैं। सदैव उन पर विश्वास रखे रखो।''

(६) मित्र का अन्तिम लक्षण है कि वह विपत्ति के समय आने पर अपने मित्र को सान्त्वना दे। जहाँ तक देने की बात है, इसमें तो प्रभु कमाल ही करते हैं। यदि हमारा कोई दुष्कर्म बाधक न हो तो उसे निहाल करते देर नहीं लगती। तभी भक्त अपने प्रिय मित्र परमपिता परमात्मा का धन्यवाद करता हुआ निम्न पंक्तियाँ कह उठता है-

मुझे तूने मालिक बहुत कुछ दिया है,
तेरा शुक्रिया है तेरा शुक्रिया है।
न मिलती अगर दी हुई दात तेरी,
तो क्या थी जमाने में औकात मेरी।
यह बन्दा तो तेरे सहारे जिया है,
तेरा शुक्रिया है तेरा शुक्रिया है।

कोई व्यक्ति किसी पार्षद, विधायक, सांसद, मन्त्री, प्रधानमन्त्री का प्रिय हो जाये तो संसार के लोग उसके प्रति नम्र हो जाते हैं, संसार का कोई भी व्यक्ति उससे कठोरता से बात नहीं करता, सम्मान से बात करता है, परन्तु यदि हम राजाओं के राजा उस परमपिता परमात्मा से मित्रता कर लें तो सारा संसार हमारे प्रति नतमस्तक हो जायेगा और हमारा सम्मान भी करने लगेगा। तभी तो कहा है कि भगवान् को सखा बना लो, उसके प्यारे हो जाओ और उससे कहो, ''मेरी बुद्धि के रथ को, मेरे जीवन के रथ को सम्भालो मेरे भगवान्। जहाँ ले जाना हो ले जाओ। मैंने तो अपने जीवन का रथ आप को अर्पित कर दिया है'' जब इस जीवन रूपी रथ को चलाने वाला ही भगवान् होगा, फिर चाहे सारा संसार विरोधी क्यों न हो जाये, दुनिया को झुकना पड़ेगा।

गुरुग्राम, हरियाणा।

सा विद्या या विमुक्तये

ब्र. राजेन्द्रार्यः

स्वामी दयानन्द सरस्वती अपने लघु ग्रन्थ 'आर्योद्देश्यरत्नमाला' के सिद्धान्त संख्या १६ में विद्या की परिभाषा लिखते हैं-''जिसमें ईश्वर से लेके पृथिवीपर्यन्त पदार्थों का सत्य विज्ञान होकर उनसे यथायोग्य उपकार लेना होता है, इसका नाम विद्या है।'' मानव जीवन का मुख्य लक्ष्य समस्त प्रकार के दुःखों से छूटना तथा स्थायी सुख की प्राप्ति करना है। बिना यथार्थ ज्ञान के पूर्ण सुख की प्राप्ति सम्भव नहीं है, इसीलिए परमपिता परमेश्वर ने जब वायु ऋषि को यजुर्वेद का ज्ञान प्रदान किया तो यजुः ४०/१४ मन्त्र में शिक्षा दी विद्या (=ज्ञान) से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयꣳसह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।।

-यजुर्वेद ४०/१४

अर्थात् जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ ही साथ जानता है वह अविद्या अर्थात् कर्मोपासना से मृत्यु को तर के विद्या अर्थात् ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है। मुण्डकोपनिषद् में अङ्गिरा ऋषि ने शौनक को यह बात कही थी।

द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्
ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च।

-मुण्डकोपनिषद् १/१/४

ये परा और अपरा क्या हैं? इनकी व्याख्या करते हुए अङ्गिरा ऋषि ने कहा-

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः।
अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।

-मुण्डक. १/१/५

संसार की समस्त विद्याओं का विभाजन दो भागों में किया गया है-अपरा विद्या और परा विद्या। अपरा विद्या के अन्दर संसार की समस्त विद्याओं को यहाँ तक कि चारों वेदों को भी अपरा विद्या में रख दिया है और परा विद्या में केवल ब्रह्म विद्या को ही स्थान दिया है। ज्ञान और विद्या क्या हैं? इनकी व्याख्या महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' में की है। वे ज्ञान की परिभाषा करते हुए लिखते हैं-'यथार्थदर्शनं ज्ञानमिति' अर्थात् किसी भी वस्तु का ठीक प्रकार से देखना अर्थात् जानना ज्ञान है। महर्षि ने इसी बात को सत्यार्थप्रकाश के नवम समुल्लास में भी दोहराया है। विद्या क्या है और अविद्या क्या है, इस बात को दर्शाते हुए लिखते हैं-

''वेत्ति यथावत्तत्त्वपदार्थ-स्वरूपं यया सा विद्या।
यया तत्त्वस्वरूपं न जानाति
भ्रमादन्यस्मिन्नन्यन्निश्चनोति साऽविद्या।''

अर्थात् जिससे पदार्थ का यथार्थ स्वरूप बोध होवे वह विद्या और जिससे तत्त्वस्वरूप न जान पड़े, अन्य में अन्य बुद्धि होवे वह अविद्या कहाती है।

विद्या की महिमा का बखान कवि शिरोमणि भर्तृहरि जी ने इस प्रकार किया है-

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं,
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः।
विद्या बन्धुजनो विदेश गमने विद्या परा देवता,
विद्या राजसु पूज्यते न तु धनं विद्याविहीन पशुः।।

(भर्तृहरि कृत- नीतिशतक १९)

अर्थात् विद्या ही मनुष्य की शोभा है, विद्या ही मनुष्य का अत्यन्त गुप्त धन है। विद्या भोग पदार्थ, यश और सुख देने वाली है। विद्या गुरुओं का भी गुरु है। विदेश यात्रा में विद्या कुटुम्बीजनों और मित्रों के समान सहायक होती है। विद्या ही सबसे बड़ा देवता है। विद्या युक्त मनुष्य का ही राजाओं और राजसभाओं में आदर सम्मान होता है, धन का नहीं, वास्तव में देखा जाये तो विद्याहीन मनुष्य पशु के तुल्य ही है।

अन्यत्र भी भृर्तहरि जी ने कहा है विद्याविहीन मनुष्य पशु तुल्य है-

येषां न विद्या न तपो न दानं,
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता,
मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति।।

–नीतिशतक, श्लोक–१२

अर्थात् जिन मनुष्यों में न कोई विद्या है, न विद्या प्राप्त करने के लिए तपस्या करते हैं, न दान की प्रवृत्ति है, न ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा है, न सरल स्वभाव है, न जीवन में और कोई उत्तम–उत्तम गुण हैं, न धर्मयुक्त व्यवहार करते हैं। ऐसे मनुष्य तो धरती पर भार बनकर–पशु–समान खाते–पीते हुए जीवन को नष्ट कर रहे हैं। संस्कृत के कवि ने कहा है–

विद्या विवादाय धनं मदाय शक्तिः परेषां परिपीडनाय।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतज्ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय।।

अर्थात् यदि सज्जन व्यक्ति को विद्या प्राप्त हो जाए तो वह कुतर्क न करके ज्ञान के आदान–प्रदान में प्रयोग करता है, परन्तु दुष्ट व्यक्ति इससे वाग्युद्ध करता है। यदि सज्जन व्यक्ति को धन प्राप्त हो जाए तो वह दान करता है, परन्तु दुष्ट व्यक्ति धन को प्राप्त करके अभिमान करता है। यदि सज्जन व्यक्ति के पास शक्ति आ जाती है तो वह दूसरों की रक्षा करता है, परन्तु दुष्ट व्यक्ति दूसरों को पीड़ा देने में इसका प्रयोग करता है।

महाभारत ५/३९/७७ में कहा है–

अविद्यः पुरुषः शोच्यः।

अर्थात् विद्याहीन मानव की दशा शोचनीय हो जाती है।

महर्षि मनु महाराज ने धर्म के दस लक्षणों में विद्या (=ज्ञान की प्राप्ति) को भी धर्म का एक लक्षण माना है।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।।

–मनुस्मृति ६/९२

अर्थात् धैर्य, क्षमा–प्रदान, मन वशीकरण, चोरी न करना, बाहरी और आन्तरिक पवित्रता, इन्द्रिय वशीकरण, मादक द्रव्यों के त्याग, सत्पुरुषों के संग एवं योगाभ्यास से बुद्धि को बढ़ाना, ज्ञान की प्राप्ति, सत्य का ग्रहण और क्रोध का अभाव–ये धर्म के दस लक्षण हैं।

महर्षि मनु ने आत्मा की पवित्रता का एक साधन विद्या भी बतलाया है–

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्या तपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।।

–मनु ०५/१०९

अर्थात् जल से बाहर के अंग, सत्याचार से मन, विद्या और धर्मानुष्ठान से जीवात्मा और ज्ञान से बुद्धि पवित्र होती है।

महर्षि मनु महाराज ने मनुस्मृति ११/१०४ में मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन विद्या को बतलाया है–

तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयस्करं परम्।
तपसा किल्विषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते।।

मनु ०११/१०४

अर्थात् तप और विद्या, विप्र तपस्वी जिज्ञासु ब्राह्मण के लिए मुक्ति के सर्वश्रेष्ठ साधन हैं। वह तप से दोषों–अपूर्णताओं का नाश करता है और विद्या से मुक्ति प्राप्त करता है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश द्वितीय समुल्लास में विद्या के प्रचार–प्रसार का उपाय बताया है–

मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद।

–शतपथ ब्राह्मण

अर्थात् वस्तुतः जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है।

मुण्डकोपनिषद् २/१२ में विद्या प्राप्ति करने वाले जिज्ञासु के लिए निर्देश दिया गया है–

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।

अर्थात् कुछ अर्पण के अर्थ हाथ में लेके वेदवित् और परमेश्वर को जानने वाले गुरु के पास विज्ञान के लिए जावे।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ की भूमिका के अन्तर्गत विद्या प्राप्त करने वाले को योग्यता, आसत्ति और तात्पर्य।

'आकाङ्क्षा' किसी विषय पर वक्ता की और वाक्यस्थ पदों की आकाङ्क्षा परस्पर होती है।

'योग्यता' वह कहाती है कि जिससे जो हो सके, जैसे जल से सींचना।

'आसत्ति' जिस पद के साथ जिसका सम्बन्ध हो उसी के समीप उस पद को बोलना व लिखना।

'तात्पर्य' जिसके लिए वक्ता ने शब्दोच्चारण वा लेख किया हो उसी के साथ उस वचन वा लेख को युक्त करना।

महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य १/१/१/१ के अन्तर्गत विद्या प्राप्ति के चार उपाय बतलाये हैं-

चतुर्भिः प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति।
आगमकालेन स्वाध्यायकालेन प्रवचनकालेन
व्यवहारकालेनेति।।

अर्थात् विद्या चार प्रकार से आती है- आगम, स्वाध्याय, प्रवचन और व्यवहार काल। अन्य भी चार कर्म विद्या प्राप्ति के लिए हैं- श्रवण, मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कार। 'श्रवण' उसको कहते हैं कि आत्मा मन के और मन श्रोत्र इन्द्रिय के साथ यथावत् युक्त करके अध्यापक के मुख से जो-जो अर्थ और सम्बन्ध के प्रकाश करने हारे शब्द निकलें, उनको श्रोत्र से मन और मन से आत्मा में एकत्र करते जाना। 'मनन' उसको कहते हैं कि जो-जो शब्द अर्थ और सम्बन्ध आत्मा में एकत्र हुए हैं उनका एकान्त में स्वस्थचित्त होकर विचार करना कि कौन शब्द किस अर्थ के साथ और कौन अर्थ किस शब्द के साथ सम्बन्ध अर्थात् मेल रखता और इनके मेल में किस प्रयोजन की सिद्धि और उल्टे होने में क्या-क्या हानि होती है इत्यादि। 'निदिध्यासन' उसको कहते हैं कि जो-जो शब्द अर्थ और सम्बन्ध सुनें, विचारे हैं वे ठीक-ठीक हैं वा नहीं? इस बात की विशेष परीक्षा करके दृढ़ निश्चय करना और 'साक्षात्कार' उसको कहते हैं कि जिन अर्थों के शब्द सुने, विचारे और निश्चय किये हैं उनको यथावत् ज्ञान और क्रिया से प्रत्यक्ष करके व्यवहारों की सिद्धि से अपना और पराया उपकार करना आदि विद्या की प्राप्ति के साधन हैं।

ऋग्वेद ८/१०१/१५ में उपदेश दिया गया है कि विद्या के प्रचार-प्रसार को मत रोको।

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्टः।।

ऋ. ८/१०१/१५

अर्थात् यह गौ (=वाण्युपलक्षित विद्या) रुद्र ब्रह्मचर्य धारण करके विद्याध्ययन करने वाले विद्वानों की निर्माण करने वाली है। वसु ब्रह्मचर्य धारण करके विद्याध्ययन करने वाले विद्वानों की मनः कामनाओं को पूरा करने वाली है। आदित्य ब्रह्मचर्य धारण करके विद्याध्ययन करने वाले विद्वानों को योग्य बनाकर उत्तमरीति से कर्मक्षेत्र में डालने वाली है। अमृत को आनन्द मंगल रूप अमृत को यह समय से पहले आने वाली मृत्यु के अभाव को नाभि में बाँधकर रखने वाली है। ज्ञान सम्पन्न समझदार पुरुष को निश्चय से मैं उपदेश देता हूँ कि मनुष्यों को ज्ञान सम्पन्न करके निष्पाप बनाने वाली और अदीन अर्थात् किसी से न दबने वाली, किसी से क्षीण न होने वाली विद्या को मत मारो। उसके प्रचार को मत रोको।

ऋग्वेद १०/४८/११ मन्त्र में विद्या पढ़ने वाले विद्वानों का उपदेश किया गया है-

आदित्यानां वसूनां रुद्रियाणां देवो
देवानां न मिनामि धाम।

-ऋग्वेद १०/४८/११

अर्थात् मैं इन्द्र (सम्राट्) राष्ट्र के आदित्य, वसु और रुद्र देवों के तेज को कभी नष्ट नहीं होने देता। आदित्य विशेषकाल तक ब्रह्मचारी रहकर विद्या पढ़ने वाले विद्वानों के नाम हैं। राजा कहता है कि मैं इन सभी प्रकार के विद्वानों के तेज को नष्ट नहीं होने दूँगा। शिक्षा प्रचार द्वारा सदा ऐसे विद्वानों को तैयार करता रहूँगा।

ऋग्वेद १/५३/२ मन्त्र में शिक्षा का प्रचार राजा का कर्त्तव्य बताया गया है-

शिक्षानरः। ऋग्वेद १/५३/२

अर्थात् हे इन्द्र (सम्राट्) तू राष्ट्र के लोगों को शिक्षित कर।

सायणाचार्य ने शिक्षानरः का अर्थ निम्नप्रकार किया है-

शिक्षानरः शिक्षया नेता प्रजानां शासक इति सायणः।

ब्रह्म शब्द वाणी और वेद अर्थ में ही नहीं, विद्या अर्थ में भी वैदिक साहित्य में प्रयुक्त होता है। उदाहरण के लिए शतपथ ब्राह्मण ११/५/६/२ में स्वाध्याय को ब्रह्मयज्ञ कहा गया है और स्वाध्याय में चारों वेदों के अतिरिक्त सभी प्रकार के अनुशासनों, विद्याओं वाकोवाक्य, इतिहास-पुराण, गाथा और नाराशंसियों को भी गिनाया गया है। इससे स्पष्ट है कि ब्रह्म शब्द चारों वेदों के अतिरिक्त विद्या मात्र में भी

प्रयुक्त होता है और किसी भी विद्या का स्वाध्याय ब्रह्मयज्ञ ही है।

विद्या प्राप्ति का परिवेश कैसा होना चाहिए। इस सम्बन्ध में यजुर्वेद में उल्लेख आता है-

उपह्वरे गिरीणां सङ्गमे च नदीनाम।
धिया विप्रो अजायत।।

-यजुर्वेद २६/१५

अर्थात् पर्वतों के निकट और नदियों के सङ्गम स्थल पर गुरुओं के प्रज्ञा और क्रिया कुशलता से युक्त मेधावी विद्वान् तैयार होते हैं।

यजुर्वेद २६/१५ मन्त्र के ऋषि दयानन्द सरस्वती कृत भाष्य को पढ़कर ही स्वामी श्रद्धानन्द ने गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय की स्थापना नगरों से दूर हिमालय पर्वत की उपत्यका में गंगा के किनारे, रमणीक वन प्रदेश में करने की प्रेरणा प्राप्त की।

विद्या की शिक्षा ग्रहण करना सबके लिए अनिवार्य होनी चाहिए। वेद के अद्वितीय वेत्ता महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है-

''राजनियम और जाति नियम होना चाहिये कि पाँचवें अथवा आठवें वर्ष से आगे अपने लड़कों और लड़कियों को घर में न रख सकें। पाठशाला में अवश्य भेज देवें। जो न भेजे वह दण्डनीय हो।''

-स.प्र. तृतीय समुल्लास पृष्ठ ४१

परमपिता परमेश्वर ने वेद में निर्देश दिया है कि शिक्षा संस्थाओं में प्रकृति, जीव और ईश्वर से सम्बन्ध रखने वाली सभी प्रकार के भौतिक और आध्यात्मिक विद्या-विज्ञानों को पढ़ाने की व्यवस्था होनी चाहिए।

तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति। -अथर्ववेद ११/५/३

यहाँ रात्रि शब्द अज्ञानान्धकार का सूचक है। जब तक तीन प्रकार का अज्ञान दूर न हो जाये तब तक आचार्य शिष्य को गुरुकुल में रखता है। जगत् में प्रकृति, जीव और ईश्वर ये तीन तत्त्व हैं। अथर्ववेद १५/५/४ में निर्देश है-

इयं समित्पृथिवि द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति।
ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस् तपसा पिपर्ति।।

-अथर्ववेद ११/५/४

अर्थात् पृथिवी पर अन्तरिक्ष में और द्यौ लोक में जितने पदार्थ हैं तृण से लेकर सूर्य और नक्षत्रों तक विश्व वाले विभिन्न विद्या विज्ञानों की शिक्षा का प्रबन्ध शिक्षणालयों में किया जाना चाहिए।

स्वामी दयानन्द सरस्वती इस बात को भलीभाँति समझते थे कि गृहस्थादि के उत्तरदायित्वों को निभाते हुए विद्या का प्रचार-प्रसार ठीक ढंग से नहीं हो सकता। इसीलिए उन्होंने अपने वैचारिक क्रान्तिकारी अमर ग्रन्थ स. प्र. ५ समुल्लास में लिखा है-

''जिस पुरुष या स्त्री को विद्या धर्मवृद्धि और सब संसार का उपकार करना ही प्रयोजन हो वह विवाह न करे। जैसे पंचशिखादि पुरुष और गार्गी आदि स्त्रियाँ हुई थीं।''- सत्यार्थप्रकाश, पञ्चमसमुल्लास, पृष्ठ ११४

ऋषि दयानन्द ने शिक्षा उद्देश्य स्वरचित श्लोक का उदाहरण देकर किया है-

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसार दुःखदलेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहित कर्म परोपकाराः।।

अर्थात् जिन पुरुषों का मन विद्या के विलास में मग्न रहता है, सुन्दरशील स्वभावयुक्त सत्यभाषणादि नियम पालनयुक्त और जो अभिमान अपवित्रता से रहित अन्य की मलिनता के नाशक, सत्योपदेश और विद्यादान से संसारी जनों के दुःखों को दूर करने वाले वेदविहित कर्मों से पराये उपकार करने में लगे रहते हैं, वे नर और नारी धन्य हैं।

आज शिक्षा में इस बात की आवश्यकता है कि छात्रों को ब्रह्मचारी बनाया जाए। ब्रह्मचारी के दो ही भोजन होने चाहिए, एक विद्या, दूसरा परमात्मा।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है-

''जैसे पुरुषों को व्याकरण, धर्म और अपने व्यवहार की विद्या न्यून से न्यून अवश्य पढ़नी चाहिये। वैसे स्त्रियों को भी व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित, शिल्पविद्या तो अवश्य ही सीखनी चाहिये।'' -सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास, पृष्ठ ६८

महात्मा विदुर का कथन है कि विद्या की रक्षा लगातार

अभ्यास से होती है-

सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते।
मृजया रक्ष्यते रूपं कुलं व्रतेन रक्ष्यते।।

-विदुरनीति २/३९

अर्थात् सत्य के द्वारा धर्म की रक्षा होती है, विद्या की रक्षा लगातार अभ्यास से होती है। सौन्दर्य की रक्षा शुद्धता से होती है और कुल की रक्षा उत्तम आचरण से होती है।

महर्षि मनु महाराज के अनुसार जो व्यक्ति विनम्र रहने वाला अपने बड़ों का आदर सम्मान करता है उसकी आयु, विद्या, यश और बल ये चार चीजें बढ़ती हैं।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्।।

-मनुस्मृति २/१२१

उन्नीसवीं सदी में जब स्वामी दयानन्द सरस्वती का प्रादुर्भाव हुआ। उस समय सम्प्रदायी और स्वार्थी धर्माचार्यों ने मिथ्या प्रचार कर रखा था-

स्त्री शूद्रौ नाधीयतामिति श्रुतेः।

अर्थात् स्त्री और शूद्र न पढ़ें यह श्रुति है। इस प्रकार देश की आधी से अधिक आबादी को विद्या प्राप्त करने से वंचित कर दिया। महर्षि दयानन्द सरस्वती का ध्यान इस ओर गया और वेद का प्रमाण देकर कहा कि सभी मनुष्यों को वेद विद्या पढ़ने का अधिकार है-

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्याᳩशूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय।।

-यजुर्वेद २६/२

अर्थात् परमेश्वर कहता है कि जैसे मैं सब मनुष्यों के लिए इस कल्याण अर्थात् संसार और मुक्ति के सुख देनेहारी ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी का उपदेश करता हूँ वैसे तुम भी किया करो।

जिस समय तक विद्या का प्रचार-प्रसार आर्यावर्त्त में रहा। संसार के आदि सम्राट् महर्षि मनु महाराज ने हिमालय की चोटी पर खड़े होकर आर्यावर्त्त के गौरव की डिण्डिम-घोषणा करते हुए कहा था-

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षरेन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।

-मनुस्मृति २/२०

अर्थात् आर्यावर्त्त देश में उत्पन्न अग्रजन्मा=ब्राह्मणों के चरणों में बैठकर संसार के लोग अपने-अपने योग्य विद्या और चरित्रों की शिक्षा ग्रहण करें।

महर्षि मनु ने राष्ट्र में सबसे अधिक माननीय विद्यावान् मनुष्य को ही बतलाया है।

वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी।
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम्।।

अर्थात् एक धन, दूसरे बन्धु कुटुम्ब कुल, तीसरी अवस्था, चौथा उत्तम कर्म और पाँचवीं श्रेष्ठ विद्या ये पाँच मान्य के स्थान हैं, परन्तु धन से उत्तम बन्धु, बन्धु से अधिक अवस्था, अवस्था से श्रेष्ठ कर्म और कर्म से श्रेष्ठ विद्या वाले उत्तरोत्तर अधिक माननीय हैं।

विद्या की उपर्युक्त महत्ता को ध्यान में रखते हुए महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने आर्यसमाज के आठवें नियम के अन्तर्गत आर्यों को निर्देश दिया कि- 'अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।'

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।

ग्रेटर फरीदाबाद, हरियाणा।

सभा के कर्मठ कार्यकर्त्ता श्री मोहनलाल तँवर - एक श्रद्धाञ्जलि

परोपकारिणी सभा के कार्यालय में प्रवेश करते ही दायीं ओर बैठे पहले व्यक्ति श्री मोहनलाल तँवर, जो कि सभा में आये प्रत्येक व्यक्ति के हृदय पर अपनी सौम्यता, सहजता की अमिट छाप छोड़ देते थे। यह 'थे' बता रहा है कि अब वह विनोदप्रिय छवि 'है' के रूप में नहीं है। वह इस संसार से विदा हो चुकी है।

परोपकारिणी सभा ने पिछले ४-५ वर्षों में अपने कई अपनों को खोया है। पूर्व सभा-कार्यालय सचिव श्री नृसिंह प्रसाद पारीक से शुरु हुई यह शृंखला एक के बाद एक सभा के निष्ठावान् कार्यकत्ताओं को अपने में समेटती चली गई। पहले पारीक जी, फिर उदारता की मूर्ति श्री भगवान्सहाय जी, विश्वसनीय सेवक श्री सुरेश शेखावत और उसके बाद सभा प्रधान डॉ. धर्मवीर जी के जाने के बाद तो जैसे सभा की कमर ही टूट गई। पर नियति को फिर भी सन्तोष न हुआ।

नियति यदि बदल जाये तो उसे फिर नियति ही कौन कहे? अपने नाम को सार्थक करते हुए इस नियति ने श्री सत्येन्द्र सिंह (सभासद्) को भी अपनी सूची में शामिल कर लिया। आज जिस पुण्यात्मा को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने के लिये ये पंक्तियाँ लिखी जा रही हैं, वह भी इसी सूची का अंग हैं। जिस धर्मवीर की अनवरत साधना ने परोपकारिणी सभा के जड़ें दूर देशों तक पहुँचायीं, उस वटवृक्ष की शाखा के रूप में श्री मोहनलाल तँवर ने खूब कार्य किया। डॉ. धर्मवीर जी परोपकारी के सम्पादक रहते हुए जब लम्बे समय के लिये प्रचार कार्य में चले जाते थे, तब आप पत्रिका की व्यवस्था में अपना पूरा योगदान देते थे। आप लम्बे समय तक परोपकारी के प्रबन्धक व मुद्रक रहे। पत्रिका के सदस्यों के नाम व पतों की व्यवस्था का गुरुतर कार्य आपने जिस कुशलता से किया वह केवल आप ही कर सकते थे। ८-१० विशालकाय रजिस्टर सामने रखकर कार्य करते हुए उन्हें प्राय: देखा जा सकता था। स्थानीय आर्यसमाज की वित्तीय व्यवस्था का कार्यभार भी आपने निष्ठा व कुशलता से वहन किया।

श्री तँवर जी की व्यंग्य रचनाएँ घोर उदासी में में भी वातावरण में मन्द मुस्कान बिखेर जातीं थीं। काव्यकला पर आपका अच्छा अधिकार था। इन सब गुणों के होने पर भी उनकी अनुपस्थिति का सर्वाधिक आभास उनके सहज स्वभाव के कारण होता है। मुझ जैसे अदना से व्यक्ति को भी वह जितने सम्मान और स्नेह भरे शब्दों से सम्बोधित करते थे, उससे उनके सरल और विशाल हृदय का पता लगाया जा सकता था।

परोपकारिणी सभा अपने हितैषी, शुभचिंतक कार्यकर्त्ता सदस्य को खोकर आहत है। संगठन के लिये कर्मचारी नहीं, कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता होती है, जो कि वेतन मात्र से नहीं मिलते, उनकी निष्ठा व समर्पण ही उन्हें इस उच्च पद पर आसीन करते हैं। श्री मोहनलाल तँवर जी की नि:स्वार्थ सेवाओं के लिये कृतज्ञता व्यक्त करते हुए परोपकारिणी सभा उन्हें हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करती है। **अंकित 'प्रभाकर'**

गुरुकुलों को छात्रवृत्ति

स्वामी विद्यानन्द जी सरस्वती (अधिष्ठाता गुरुकुल गदपुरी, जिला पलवल, हरियाणा) ने अपने वैदिक प्रचार ट्रस्ट के द्वारा परोपकारिणी सभा में एक स्थिर निधि बनाई, जिसका उद्देश्य आर्य समाज की शैक्षणिक संस्थाओं (गुरुकुलों) को आर्थिक सहयोग प्रदान करना है। इस स्थिर निधि से प्राप्त ब्याज से परोपकारिणी सभा प्रतिवर्ष गुरुकुलों को छात्रवृत्ति प्रदान करती है। गत वर्ष कुल १,२२,००० रु. की छात्रवृत्ति दी गई, जिसका विवरण निम्न प्रकार है-

क्र. सं.	**संस्था का नाम**	
०१.	आर्ष कन्या गुरुकुल ट्रस्ट, हसनपुर, पलवल, हरियाणा	१०.०००/-
०२.	गुरुकुल महाविद्यालय, ५७, बहादुरगढ़, हापुड़, उ.प्र.	१०.०००/-
०३.	आर्ष कन्या गुरुकुल दाधिया, जि. अलवर, राजस्थान	१०.०००/-
०४.	सर्वानन्द संस्कृत महाविद्यालय साधु आश्रम, अलीगढ़, उ.प्र.	१०.०००/-
०५.	महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट, टंकारा, गुजरात	१०.०००/-
०६.	महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल व गोशाला एम.डी.एच., जि. मेवात, हरियाणा	१०.०००/-
०७.	आर्य कन्या गुरुकुल शिवगंज, सिरोही, राजस्थान	१०.०००/-
०८.	कन्या गुरुकुल चामड़ अलीगढ़, उ.प्र.	१०.०००/-
०९.	श्रीमद् दयानन्द गुरुकुल विद्यापीठ गदपुरी, जि. पलवल, हरियाणा	२१.०००/-
१०.	श्री कृष्ण आर्ष गुरुकुल, देवलिया	१०.०००/-
११.	महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, अजमेर, राजस्थान	११.०००/-

विद्या की वृद्धि हेतु दिये इस सराहनीय सहयोग के लिये परोपकारिणी सभा स्वामी विद्यानन्द जी का धन्यवाद करती है।

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते?

तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें, इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

परोपकारिणी सभा की गतिविधियाँ

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित उनकी उत्तराधिकारिणी सभा है और केवल नाम से ही नहीं, बल्कि अपने कार्यों से भी वह ऋषि के उत्तराधिकार के दायित्व को पूर्णतया निभा रही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती

ने इस सभा की स्थापना के समय तीन उद्देश्य रखे थे।

१. वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रकाशन २. विद्वान् उपदेशक तैयार करके देश-विदेश में वैदिक धर्म का प्रचार एवं ३. आर्यावर्त्तीय दीन-दरिद्रों की सेवा।

इन सभी कार्यों को सभा अपने विभिन्न प्रकल्पों के माध्यम से पूरा करने में सर्वसामर्थ्य से लगी हुई है। यद्यपि सभा के पास आर्थिक आय का कोई स्थाई माध्यम नहीं है, पुनरपि ऋषिभक्तों एवं आर्यजनों के सहयोग और विश्वास पर ही सभा ने बड़े-बड़े कार्यों को प्रारम्भ किया और निरन्तर कर भी रही है। आचार्य डॉ. धर्मवीर जी, जो कि वर्तमान में परोपकारिणी सभा के प्रधान एवं मूल स्तम्भ थे, उनका कहना था कि **''कार्य यदि अच्छा है तो उसे प्रारम्भ कर देना चाहिये, सहयोग तो स्वयं ही मिल जाता है।''** यही शैली अपनाकर आज भी वैदिक विचार के प्रचार का कार्य निरन्तर जारी है। डॉ. धर्मवीर जी के जाने से सभा को बड़ा आघात अवश्य लगा है, परन्तु आर्यों का स्नेह, भरोसा उनके द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्यों को रुकने नहीं देगा-ऐसा सभा को पूर्ण विश्वास है।

परोपकारिणी सभा आज अनेक कार्यों, माध्यमों से इस वेद प्रचार यज्ञ में लगी है, जिसकी सूची यहाँ दी जा रही है-

भव्य ऋषि उद्यान आश्रम, अतिथि यज्ञ, भोजनशाला, गौशाला, वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रम, गुरुकुल, परोपकारी पत्रिका, प्रकाशन, योग साधना एवं चरित्र निर्माण शिविर, सत्यार्थ प्रकाश व ऋषि जीवन चरित्र का नि:शुल्क वितरण, पाण्डुलिपियों का डिजिटलाइजेशन, पुस्तकालय, औषधालय, देश-देशान्तरों में वेद-प्रचार, आयुर्वेदिक औषधालय।

दयानन्द धर्मार्थ चिकित्सालय

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित ऋषि उद्यान में वर्ष २०१२ से आयुर्वेदिक चिकित्सालय चल रहा है। चिकित्सालय में उपलब्ध सभी औषधियाँ नि:शुल्क दी जाती हैं।

दानी महानुभावों से सहयोग की भी अपेक्षा है।

परोपकारिणी सभा में आयुर्वेदिक चिकित्सक की आवश्यकता

सभा द्वारा संचालित आयुर्वेदिक चिकित्सालय के लिये योग्य आयुर्वेदिक चिकित्सक की आवश्यकता है। चिकित्सालय में सेवा देने का समय प्रतिदिन २ घण्टे है। आवास, भोजन आदि की व्यवस्था सभी की ओर से ही होगी।

सम्पर्क- ०१४५-२६२१२७०, ९४६०४२११८३

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

दानदाताओं की सूची

अतिथि यज्ञ के होता

(०१ से ३० अप्रैल २०१९ तक)

१. श्री रजनीश मोहिन्द्रा, नई दिल्ली २. अभिषेक दाधीच, भीलवाड़ा ३. श्रीमती सुवर्चा व श्री अंकुर भार्गव, बंगलोर ४. मै. छोगमल चेरिटेबिल ट्रस्ट, इन्दौर ५. मै. स्वस्तिकॉम चेरिटेबिल ट्रस्ट, अमरावती ६. श्री फतेह सिंह पीपाड़, अजमेर ७. मेजर रतन सिंह यादव, रेवाड़ी ८. श्री सूर्यप्रकाश आर्य, विदिशा ९. श्री राजेन्द्र कुमार गुप्ता, कोटा १०. आर्यसमाज, नगर भरतपुर ११. श्री सत्यवीर आर्य, भरतपुर १२. श्री दीनदयाल आर्य, भरतपुर १३. श्री विपिन, भरतपुर १४. श्री प्रेम सिंह, दौसा १५. श्री लक्ष्मण प्रसाद त्रिवेदी, जूनागढ़ १६. श्री अंकित कुमार, बिजनौर १७. श्री नरेन्द्रकान्त गर्ग, अमरोहा १८. श्री कुलदीप आर्य, बिजनौर १९. श्री शिवम्, बिजनौर २०. इं. करणसिंह, मुजफ्फरनगर २१. श्री गोपाल यादव, ग्राम भुवनीया २२. श्री नीलमणि पन्त, अजमेर २३. श्रीमती निर्मला गुप्ता, अजमेर २४. श्री सुरेन्द्रमोहन विकल, लुधियाना २५. श्री माणिकचन्द जैन, छोटी खाटू।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गौशाला संचालित है। गोशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में निःशुल्क किया जाता है। आप सभी गौ-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गौशाला के दानदाता

(०१ से ३० अप्रैल २०१९ तक)

१. श्री अभिनव बाल्दी, अजमेर २. श्री मनीष पण्ड्या, अजमेर ३. श्रीमती सुलेखा शर्मा, अजमेर ४. श्री ओमप्रकाश लढ्ढा, अजमेर ५. श्री रामचन्द्र सोमानी, अजमेर ६. श्री लक्ष्मीनारायण मालु, अजमेर ७. श्रीमती राजकुमारी मल्होत्रा, अजमेर ८. श्री रामस्वरूप कुमावत, अजमेर ९. श्री मयंक कुमार, अजमेर १०. श्री दिलीप सिंह, अजमेर ११. श्री ज्ञानसिंह पँवार, अजमेर १२. मै. ड्रीम मार्बल्स प्रा. लि., किशनगढ़ १३. श्री ओमप्रकाश ईनाणी, किशनगढ़ १४. श्री भोजराज राठी, किशनगढ़ १५. श्री सीताराम बंसल, किशनगढ़ १६. श्री ओमप्रकाश सोमानी, अजमेर १७. श्री जुगलकिशोर पन्त, अजमेर १८. श्रीमती चन्द्रकान्ता माहेश्वरी, अजमेर १९. श्री रतनलाल तापड़िया, अजमेर २०. श्री भगवतीप्रसाद काबरा, अजमेर २१. श्री आशुतोष पारीक, अजमेर २२. श्री ओमप्रकाश वैष्णव, अजमेर २३. श्रीमती मञ्जु माथुर, अजमेर २४. श्री राम तोलवानी, अजमेर २५. श्रीमती रश्मि, अजमेर २६. श्री महावीरप्रसाद सोमानी, किशनगढ़ २७. श्री रामपाल छीपा, किशनगढ़ २८. श्री माणिक चन्द जैन, छोटी खाटू २९. आर्यसमाज दुजार, नागौर।

परोपकारिणी सभा द्वारा आयोजित आगामी कार्यक्रम

१. १३ से २० अक्टूबर, २०१९- **योग-साधना शिविर**

२. ०१, ०२, ०३ नवम्बर २०१९- **ऋषि मेला**

ऋषि उद्यान में होने वाले कार्यक्रमों के लिए

सम्पर्क सूत्र- ०९४६०४२११८३, ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२१२७०

(परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित)

योग–साधना शिविर

दिनांक : १६ से २३ जून २०१९

आर्यसमाज के उच्चकोटि के विद्वान् व साधकों के निर्देशन में परोपकारिणी सभा योग साधना शिविर का आयोजन कर रही है। अपने आध्यात्मिक जीवन को गति प्रदान करने में ये शिविर सहयोगी होगा।

इच्छुक प्रार्थियों हेतु नियम व अनुशासन

१. प्रत्येक प्रार्थी के लिए पूर्ण मौन अनिवार्य होगा।

२. शिविर के काल में किसी साधक के द्वारा नियम व अनुशासन भंग करने पर उसे शिविर के मध्य में ही शिविर छोड़ने के लिए बाध्य किया जा सकता है।

३. पूरे शिविर में साधक के द्वारा किसी भी माध्यम से बाह्य–सम्पर्क करना निषिद्ध रहेगा।

४. शिविर काल में किसी भी साधक को ऋषि उद्यान परिसर से बाहर जाने की अनुमति नहीं होगी।

५. साधकों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति ऋषि–उद्यान परिसर में ही की जायेगी।

६. बाह्य–वृत्ति उत्पादक साधनों जैसे– समाचार–पत्र पढ़ना, आकाशवाणी श्रवण व दूरदर्शन देखने आदि पर पूर्ण प्रतिबन्ध रहेगा।

७. किसी प्रकार का शारीरिक रोग यथा– खाँसी, जुकाम अथवा अन्य कोई ध्वनि उत्पादक रोग वाले को प्रवेश नहीं दिया जायेगा।

८. बच्चों को साथ लाये जाने पर प्रार्थी को शिविर में प्रवेश नहीं दिया जाएगा।

९. शिविर के प्रारम्भ दिन से लेकर समापन–सत्र पर्यन्त पूर्ण रूप से शिविर में भाग लेना अनिवार्य होगा।

१०. नियम व अनुशासन के पालन को आवेदन में ही लिखित स्वीकार करना होगा।

उपरिलिखित किसी भी नियम व अनुशासन का पालन करने में असमर्थ व अयोग्य प्रार्थी को शिविर में प्रवेश नहीं दिया जायेगा।

प्रार्थियों के लिए सूचनाएँ- परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर (राज.) कार्यालय से (०१४५-२४६०१६४) से संपर्क कर शिविर से पूर्व शुल्क जमा करवा कर अपने नाम का पंजीयन करा लें। शिविर में माता–बहिनें भी भाग ले सकती हैं। पुरुषों एवं महिलाओं के आवास की सामूहिक व्यवस्था पृथक्–पृथक् की जाती है। पृथक् कक्ष चाहने वालों को अतिरिक्त शुल्क १००० से २००० रु. देय होता है। पृथक् कक्ष की व्यवस्था पूर्व सूचना व उपलब्धता के अनुसार की जाती है। ऋषि उद्यान में दरी, गद्दे, तकिए एवं बर्तन उपलब्ध हैं, शेष दैनिक उपयोग की वस्तुएँ यथा मंजन, ब्रश, साबुन, तेल, दवाएँ, बिछाने–ओढ़ने की चादरें, लिखने के लिए संचिका (नोटबुक), लेखनी, करदीप (टार्च) आदि को साधक अपने साथ लाएँ। वस्त्र सादगी एवं शिष्टाचार के अनुकूल हों, आभूषणों एवं सुगन्धित द्रव्यों का उपयोग न हो। आपके पास योगदर्शन हो तो साथ लाएँ। सतर्कता की दृष्टि से कीमती वस्तुएँ साथ न लायें। यदि आपको कोई संक्रामक रोग, तेज खांसी, दमा, मिर्गी आदि मानसिक रोग, वायु विकार या अन्य गंभीर रोग हो, तो कृपया शिविर में आना स्थगित रखें। लौटने का रेल–आरक्षण शिविर में आने से पूर्व करवा लें। अजमेर पहुँचने की सूचना घर पर देनी हो तो शिविर स्थल में प्रवेश से पहले दे देवें। खाने–पीने की वस्तुएँ साथ न

लावें।

यह शिविर परोपकारिणी सभा, अजमेर के सौजन्य से आयोजित किया जा रहा है। शिविर शुल्क १००० रु. मात्र जमा करना होगा। शिविर में भाग लेने वालों को शिविर की प्रारंभ दिनांक को सायं चार बजे तक शिविर स्थल ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर (०१४५-२६२१२७०) में पहुँच जाना आवश्यक है क्योंकि इसी दिन शाम को शिविर के अनुशासन एवं विभिन्न व्यवस्थाओं संबन्धी महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ दी जाएँगी। शिविर का समापन अन्तिम दिन दोपहर एक बजे तक होगा। शिविर समाप्ति से पूर्व जाने की अनुमति नहीं दी जायेगी।

शिविर से आपका जीवन श्रेष्ठतर व पवित्रतर बने, इन्हीं शुभकामनाओं के साथ।

कन्हैयालाल आर्य, मन्त्री, परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर दूरभाष : ०१४५-२४६०१६४

: मार्ग :

ऋषि उद्यान शिविर स्थल पर पहुंचने के लिए फॉयसागर की ओर जाने वाली सिटी बस या ऑटो-रिक्शा, रेलवे स्टेशन व बस स्टैण्ड से (वाया-आगरा गेट/फव्वारा चौराहा) सर्वदा सुलभ रहते हैं।

email:psabhaa@gmail.com **संयोजक**

वैदिक पुस्तकालय अजमेर द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर विशेष छूट

१. कुल्लियाते आर्य मुसाफिर (पं. लेखराम ग्रन्थ संग्रह)- दो भाग

लेखक- पण्डित लेखराम

सम्पादक- प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु, अबोहर, पंजाब

मूल्य- रुपये ~~१५०~~/- **छूट पर**- ६००/-

२. महर्षि दयानन्द का पत्र-व्यवहार (दो भाग में)

मूल्य - रुपये ~~८००~~/- **छूट पर - ५००/-**

३. अष्टाध्यायी भाष्य- ३ भाग (१ सैट)

भाष्यकार- महर्षि दयानन्द सरस्वती

मूल्य- रुपये ~~५००~~/- **छूट पर**- ३५०

पुस्तकें हेतु सम्पर्क करें:-

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाता धारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर। दूरभाष - 0145-2460120**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800